3.1 भाषा

3.2 गणित

3.3 विज्ञान

3.4 सामाजिक विज्ञान

3.5 कला शिक्षा

3.6 स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

3.7 काम और शिक्षा

3.8 शांति के लिए शिक्षा

3.9 आवास और सीखना

3.10 अध्ययन और आकलन की योजनाएँ

3.11 आकलन और मूल्यांकन

अध्याय 3 : पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आकलन

सामाजिक अपेक्षाओं और विभिन्न व्यापक अनुशासनों के अध्ययन में आए बड़े बदलावों के बावजूद, पाठ्यचर्या योजना के लिए प्रासंगिक प्रमुख क्षेत्र बहुत लंबे समय तक स्थिर ही रहे हैं। यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या के प्रत्येक क्षेत्र पर गहन पुनर्विचार किया जाए ताकि उभरती सामाजिक ज़रूरतों के संदर्भ में प्रवेश के विशेष बिंदु पहचाने जा सकें। इस संबंध में कलाओं, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की भूमिका व स्थिति पर विशेष ध्यान देना होगा, जिन्हें लगभग एक सदी पहले 'पाठ्यक्रम-सहगामी' क्षेत्र की परिधि में डाल दिया गया था। बढ़ते बच्चे की रचनात्मकता का प्रमुख भाग है सौंदर्यबोध एवं अनुभव। इसलिए हमें कलाओं को बाकायदा पाठ्यचर्या के क्षेत्र में लाना होगा— उन्हें अधिगम के सभी क्षेत्रों में समाहित कर विभिन्न अवस्थाओं में प्रासंगिक कलाओं को उनकी पहचान देनी होगी। काम, शांति और स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की भी ऐसी ही स्थिति है। आर्थिक, सामाजिक व व्यक्तिगत विकास के लिए इन तीनों का बुनियादी महत्त्व है। यह

सुनिश्चित करने में स्कूलों की महत्वपूर्ण भूमिका है कि आत्मनिर्भरता, शांति-आधारित मूल्यों व स्वास्थ्य की संस्कृति में बच्चों का समाजीकरण हो।

3.1 भाषा

इस दस्तावेज़ में भाषा में द्वि/बहुभाषिकता निहित है। और जब हम घर की भाषा(ओं) और मातृभाषा(ओं) की बात करते हैं तो इसके अंतर्गत घर की भाषा, बड़े कुनबे की भाषा, आस-पड़ोस की भाषा आदि आ जाती हैं, जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है। बच्चों में भाषा की जन्मजात क्षमता होती है। हम रोज़मर्रा के अनुभव से जानते हैं कि ज्यादातर बच्चे, स्कूल की शिक्षा की शुरुआत से पहले ही भाषा की जटिलताओं और नियमों को आत्मसात कर पूर्ण भाषिक क्षमता रखते हैं। कई बार जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनमें पहले से ही दो या तीन भाषाओं को समझने और बोलने की क्षमता होती है। वे न केवल उन भाषाओं को सही-सही बोल लेते हैं, बल्कि उनका उचित प्रयोग भी कर रहे होते हैं। यहाँ तक कि भिन्न प्रतिभा वाले बच्चे, जो बोल नहीं पाते वे भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए उतने ही जटिल वैकल्पिक संकेतों और प्रतीकों का विकास कर लेते हैं।

भाषाएँ एक प्रकार से स्मृतिकोश का भी काम करती हैं, जिसमें अपने सहवक्ताओं से विरासत में मिले संकेतों के साथ अपने जीवन-काल में बनाए संकेत भी शामिल होते हैं। ये वे माध्यम भी हैं जिनसे अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है, इसलिए इनका मनुष्य के विचार और उसकी अस्मिता से गहरा संबंध होता है। वास्तव में, उनका अस्मिता के साथ इतना गहरा संबंध होता है कि बच्चे की मातृभाषा(ओं) को नकारना या उनको मिटाने के प्रयास उसके व्यक्तित्व में हस्तक्षेप की तरह लगते हैं। प्रभावी समझ और भाषा(ओं) के प्रयोग के माध्यम से बच्चे विचारों, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आपको जोड़ पाते हैं।

अगर हम भाषा शिक्षण के लिए स्कूल में कोई कार्यक्रम शुरू करते हैं तो यह महत्वपूर्ण है कि बच्चे की सहज भाषायी क्षमता को पहचानें और याद रखें कि भाषाएँ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से बनती हैं और हमारे दैनंदिन व्यवहार से बदलती रहती हैं। शिक्षा में भाषाओं के लिए आदर्श यही है कि उनका इसी संसाधन के आधार पर विकास हो और साक्षरता के विकास के साथ (लिपियों में ब्रेल भी) अकादमिक भाषा के रूप में इसे विकसित करने के लिए समृद्ध भी किया जाए। जिन बच्चों में भाषा संबंधी अक्षमता हो उनके लिए मानक संकेत भाषा अपनाई जाए जिससे उनके सतत और पूर्ण विकास को समर्थन मिलता रहे। विद्यार्थियों की भाषिक क्षमता की पहचान से उनका स्वयं के और अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति विश्वास भी बढ़ेगा।

> बहुभाषिकता, जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाए।

3.1.1 भाषा शिक्षा

भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो पेश करती ही है, लेकिन वह कई प्रकार के अवसर भी देती है। भारत केवल इस मामले में ही अनूठा नहीं है कि यहाँ अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, बल्कि उन भाषाओं में अनेक भाषा-परिवारों का प्रतिनिधित्व भी है। दुनिया के और किसी भी देश में पांच-भाषा परिवारों की भाषाएँ नहीं पाई

कई अध्ययनों से पता चला है कि द्विभाषी क्षमता संज्ञानात्मक वृद्धि, सामाजिक सहिष्णुता, विस्तृत चिंतन और बौद्धिक उपलब्धियों के स्तर को बढ़ा देती है। सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषिकता एक ऐसा संसाधन है जिसकी तुलना किसी भी अन्य राष्ट्रीय संसाधन से की जा सकती है।

जातीं। संरचना के स्तर पर वे इतनी भिन्न हैं कि उन्हें विभिन्न भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया जा सकता है जिनके नाम हैं – इंडो-आर्यन, द्रविड़, ऑस्ट्रो-एशियाटिक, तिब्बतो-बर्मन और अंडमानी। ये भाषाएँ आपस में सतत संपर्क-संवाद भी करती रहती हैं। अनेक भाषिक और सामाजिक-भाषिक विशेषताएँ ऐसी हैं जो सभी भाषाओं में समान रूप से पायी जाती हैं। यह इस बात का सबूत है कि भारत में विभिन्न भाषाएँ और संस्कृतियाँ सदियों से एक दूसरे को समृद्ध करती रही हैं। शास्त्रीय भाषाएँ; जैसे- लैटिन, अरबी, फारसी, तमिल और संस्कृत विभक्ति प्रधान व्याकरण के मामले में और सौंदर्यबोध की दृष्टि से काफी समृद्ध रही हैं और हमारे जीवन को प्रदीप्त करती रही हैं, क्योंकि अनेक भाषाएँ उनसे शब्द लेती रहती हैं।

आज, हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि द्विभाषिकता या बहुभाषिकता से निश्चित संज्ञानात्मक लाभ होते हैं। त्रिभाषा-फॉर्मूला भारत की भाषा-स्थिति की चुनौतियों और अवसरों को संबोधित करने का एक प्रयास है। यह एक रणनीति है जिसे कई भाषाएँ सीखने के मार्ग को प्रशस्त करना चाहिए। इसे कार्यरूप और भावरूप दोनों ही में अपनाने की आवश्यकता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य भारत में बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव का प्रसार है। निम्नलिखित दिशा-निर्देश इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं :

- भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए, केवल कई भाषाओं के शिक्षण के ही अर्थ में नहीं, बल्कि रणनीति तैयार करने के लिहाज से भी ताकि बहुभाषिक कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाया जाए।
- बच्चों की घरेलू भाषा(एँ), जैसा कि 3.1 में पारिभाषित किया गया है, स्कूल में शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए।
- अगर स्कूल में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषा(ओं) में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की स्कूली शिक्षा अवश्य घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चे की घरेलू भाषाओं को सम्मान दें। हमारे संविधान की धारा 350-क के मुताबिक, 'प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।'
- बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। त्रिभाषा फॉर्मूला को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की ज़रूरत है, ताकि वह बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा दे।
- गैर-हिंदी भाषी राज्यों में, बच्चे हिंदी सीखते हैं। हिंदी प्रदेशों के मामले में, बच्चे वह भाषा सीखें जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है।
- बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय करवाया जा सकता है।

3.1.2 घरेलू/प्रथम भाषा(एँ) या मातृभाषा शिक्षा

यह ज़ाहिर है कि अपनी सहजात भाषिक क्षमता और परिवार तथा आसपास के लोगों से अंतःक्रिया का अनुभव लेकर जब बच्चे स्कूल आते हैं तो उनमें अपनी भाषा या कई मामलों में अनेक

साहित्य भी बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ा सकता है। कोई कहानी, कविता या गीत सुनकर बच्चे भी स्वयं कुछ लिखने की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं। उनको इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अलग-अलग रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों को आपस में मिलाएँ।

भाषाओं में संवाद करने की क्षमता पूर्णतः विकसित होती है। वे केवल हजारों शब्दों के साथ स्कूल नहीं आते, बल्कि भाषा की जटिल और समृद्ध संरचनाओं के नियम; जैसे - ध्वनि, शब्द, वाक्य और संवाद के स्तर पर भी उनका पूरा नियंत्रण होता है। एक बच्चा न केवल सही-सही समझना और बोलना जानता है, बल्कि वह अपनी भाषा(ओं) का उचित प्रयोग भी करता है। बच्चे व्यक्ति, स्थान और विषय के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकते हैं। बच्चों के पास स्पष्टतः भाषा की जटिल संरचनाओं को ध्वनि प्रवाह के द्वारा अमूर्त करने की संज्ञानात्मक क्षमताएँ होती हैं। कक्षा में क्षमता को उच्च स्तर के संवाद तथा ज्ञान-संवेदना के द्वारा विकसित करना ही प्रथम भाषा के शिक्षण का उद्देश्य होना चाहिए। कक्षा 3 के बाद से मौखिक और लिखित माध्यमों से उच्चस्तरीय संवाद कौशल और आलोचनात्मक चिंतन के विकास के प्रयास हों। प्राथमिक स्तर पर बच्चों की भाषा(ओं) को बिना सुधारे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जिस रूप में वे होती हैं। कक्षा 4 के बाद अगर समृद्ध और रुचिकर मौके दिए जाएँ, तो बच्चे स्वयं भाषा के मानक रूप को ग्रहण कर लेते हैं, लेकिन इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे की घरेलू भाषा के प्रति उचित सम्मान का भाव बना रहना चाहिए। यह स्वीकार करें कि गलतियाँ, अधिगम का हिस्सा होती हैं और बच्चे जब इस लायक हो जाएँ तो वे स्वयं उसमें सुधार कर लेते हैं। गलतियाँ और कमियों पर ध्यान दिए जाने की बजाय अधिक समय बच्चों को विस्तृत, रुचिकर और चुनौतीपूर्ण निवेश दिए जाने चाहिए।

स्कूल में घरेलू भाषाओं के शिक्षण के महत्व का बढ़ा-चढ़ा कर बखान करना कठिन है। यद्यपि बच्चे स्कूल में बुनियादी संवाद क्षमता के कौशल में समर्थ होकर आते हैं, उनको स्कूल में संज्ञानात्मक रूप से उच्चस्तरीय भाषिक क्षमता को अपनाने की ज़रूरत होती है। बुनियादी भाषा-क्षमता ऐसे मामलों के लिए तो पर्याप्त होती है जहाँ सुसंदर्भित और संज्ञानात्मक रूप से कुछ खास हवाले नहीं देने होते, जैसे बच्चों के अपने समूह में बातचीत के लिए। लेकिन उच्च स्तर की अभिव्यक्ति-क्षमता की आवश्यकता तब पड़ती है जब परिस्थितियों के संदर्भ कमज़ोर हों और वे संज्ञानात्मक माँग करें, जैसे किसी अमूर्त विषय पर निबंध लिखना। यह अब स्थापित हो चुका है कि उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का एक भाषा से दूसरी भाषा में आसानी से स्थानांतरण हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम उसके लिए हर संभव प्रयत्न करें ताकि स्कूल स्तर पर भारतीय भाषाओं में सतत शिक्षा को समृद्ध किया जा सके।

भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षाएँ भी एक तरह से भाषा की ही कक्षा होती हैं। किसी विषय को सीखने का मतलब है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, उनके बारे में आलोचनात्मक ढंग से चर्चा करना और उनके बारे में लिख सकना। कुछ विषयों को लेकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अलग-अलग पुस्तकों का अध्ययन करें या उन भाषाओं में लोगों से बातचीत करें, इंटरनेट से अंग्रेज़ी में सामग्री एकत्रित करें। भाषा को लेकर पाठ्यचर्या में ऐसी नीति अपनाने से स्कूल में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही, भाषा की शिक्षा कुछ अनूठे अवसर उपलब्ध कराती है। कहानी, कविता, गीतों और नाटकों के माध्यम से बच्चे अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ते हैं और इससे उनको अपने अनुभव विकसित करने और दूसरों के प्रति संवेदनशील होने के अवसर मिलते हैं। हम यह

भी ध्यान दिला दें कि बच्चे इस प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से व्याकरण भी अधिक आसानी से सीख सकते हैं न कि उबाऊ व्याकरण शिक्षण से।

विभिन्न योग्यताओं वाले बच्चे सामान्य सामाजिक व्यवहारों से बुनियादी भाषा-क्षमता का विकास कर लेते हैं। लेकिन उनको विशेष रूप से तैयार की गई सामग्री अलग से भी दिए जाने की ज़रूरत है ताकि उनकी वृद्धि और विकास पर्याप्त ढंग से हो सके। अन्य बच्चों के लिए ब्रेल और संकेत भाषा वैकल्पिक अध्ययन के तौर पर रखी जा सकती है।

3.1.3 द्वितीय भाषा सीखना

भारत के बहुभाषी समाज में अंग्रेज़ी एक वैश्विक भाषा है। यहाँ अंग्रेज़ी-शिक्षण में विविधता की स्थिति दो कारणों से है, एक शिक्षकों की अंग्रेज़ी में दक्षता और विद्यार्थियों का स्कूल से बाहर अंग्रेज़ी भाषा से सामना। अंग्रेज़ी आरंभ करने के स्तर का मुद्दा जनता की आकांक्षाओं का राजनीतिक प्रत्युत्तर है, नाकि इसके पीछे कोई अकादमिक या साध्यता का मुद्दा है। अंग्रेज़ी को पाठ्यचर्या में किस स्तर से पढ़ाया जाए इस बारे में जनता की प्राथमिकताओं का आदर करना होगा इस आश्वासन के साथ कि हम उस तंत्र को और अधिक नीचे न ले जाएँ जो अपेक्षित परिणाम देने में असफल रहा है।

द्वितीय भाषा की पाठ्यचर्या के दोहरे लक्ष्य हैं: वैसी बुनियादी दक्षता प्राप्त करना, जैसी प्राकृतिक भाषा ज्ञान में अर्जित की गई हो, और साक्षरता द्वारा भाषा का ऐसा विकास कि वह अमूर्त चिंतन और ज्ञान का उपकरण बने (उदाहरण के लिए)। यह संपूर्ण पाठ्यचर्या संबंधी उपागम की बात करता है, जो अंग्रेज़ी और अन्य विषयों तथा अंग्रेज़ी या अन्य भारतीय भाषाओं की दीवार को तोड़ दे। आरंभिक स्तर पर, अंग्रेज़ी वह भाषा हो सकती है जिसके माध्यम से बच्चों को ऐसी शैक्षणिक गतिविधियाँ करवाई जाएँ जिससे दुनिया के बारे में बच्चे की जागरूकता बढ़े। बाद के चरणों में, सभी अधिगम भाषा के ज़रिए होते हैं। उच्च स्तर का भाषा-कौशल सभी भाषाओं में समान होता है; पढ़ना (उदाहरण के लिए) एक ऐसा कौशल है जो दूसरों को सिखाया जा सकता है। एक भाषा में इसके सुधार का असर अन्य भाषाओं में भी सुधार लाता है। अपनी भाषा में पढ़ने में यदि कोई असफल होता है, तो उससे दूसरी भाषा के पठन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अंग्रेज़ी एकाकी नहीं है। अंग्रेज़ी शिक्षण का लक्ष्य ऐसे बहुभाषी लोगों को तैयार करना है जो

> संविधान द्वारा हर बच्चे को आठ साल की शिक्षा की गारंटी दी गई है, जिसके अंतर्गत अंग्रेज़ी भाषा में दक्षता चार वर्षो की अवधि में प्राप्त करना संभव होना चाहिए। प्रारंभ से ही स्कूल में बहुभाषिक माहौल बनाने से उसके दुष्प्रभाव भी सामने आ सकते हैं। जैसे अपनी भाषा का क्षरण और न समझ पाने का बोझ।

हमारी भाषाओं को समृद्ध कर सकें; यह एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा है। विभिन्न राज्यों में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी का स्थान बनाने की आवश्यकता है, जहाँ अन्य भाषाएँ अंग्रेज़ी सीखने-सिखाने को समृद्ध करें; और अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में अंग्रेज़ी के वर्चस्व को कम करने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं के मूल्यवर्धन की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों की तुलनात्मक सफलता यह बताती है कि भाषा तब सीखी जाती है जब वह भाषा के रूप में नहीं पढ़ाई जाती बल्कि सार्थक संदर्भों से जोड़कर उसे पढ़ाया जाता है। इसलिए अंग्रेज़ी को अन्य विषयों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए; प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से संपूर्ण पाठ्यचर्या के अंतर्गत भाषा शिक्षण का विशेष महत्व है और बाद में सभी शिक्षण एक अर्थ में भाषा शिक्षण ही होता है। यह दृष्टिकोण 'विषय के रूप में अंग्रेज़ी' और 'माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी' की दूरी को पाट सकेगा। इस तरह से हम समान

स्कूली पद्धति की दिशा में प्रगति कर सकते हैं जिसमें भाषा शिक्षण और शिक्षण के माध्यम के रूप में भाषा के उपयोग में भेद न हो।

निवेश-समृद्ध संप्रेषण का वातावरण भाषा शिक्षण की पूर्व शर्त है, चाहे वह पहली भाषा हो या दूसरी। निवेश के अंतर्गत आते हैं - पाठ्यपुस्तकें, शिक्षार्थी द्वारा चयनित पाठ और कक्षा पुस्तकालय जिसमें अनेक विधाओं के लिए जगह हो; छपी सामग्री (उदाहरण के लिए युवा शिक्षार्थियों के लिए बड़ी पुस्तकें); एक से अधिक भाषा में समांतर पुस्तकें और सामग्री; मीडिया सामग्री (मैगजीन/समाचारपत्र के स्तंभ, रेडियो/ऑडियो कैसेट); और प्रामाणिक सामग्री। वंचित शिक्षार्थियों के लिए भाषा माहौल को समृद्ध बनाने की ज़रूरत है जिसके लिए स्कूलों को सामुदायिक शिक्षण केंद्र के रूप में विकसित करना चाहिए। इस दिशा में कई सफल नवाचार मौजूद हैं जिनके सामान्यीकरण को खोजने और बढ़ावा देने की ज़रूरत है। पद्धतियाँ और दृष्टिकोण विशिष्ट न हों, बल्कि मोटे तौर पर विस्तृत संज्ञानात्मक दर्शन के अनुकूल रहते हुए पारस्परिक रूप से समर्थक हों (जिसमें वायगोत्सकी, पियाजे और चॉमस्की के सिद्धांत शामिल हों)। उच्चस्तरीय कौशल (जिसमें साहित्यिक आस्वाद और जेंडर संबंधी दृष्टिकोण निर्धारण में भाषा की भूमिका शामिल है) विकसित करने की ओर तब ध्यान दिया जाए जब बुनियादी दक्षता सुनिश्चित हो चुकी हो।

शिक्षक की शिक्षा सतत, जहाँ वह शिक्षण कार्य कर रहा हो वहाँ (औपचारिक या अनौपचारिक सहायक व्यवस्थाओं द्वारा), साथ ही उसे तैयार करने वाली होनी चाहिए। दक्षता और व्यावसायिक जागरूकता को समान रूप से बढ़ावा दिए जाने की ज़रूरत है और व्यावसायिक जागरूकता जहाँ आवश्यक हो उसे शिक्षक की अपनी भाषा के माध्यम से दिए जाने की ज़रूरत है। जो भी शिक्षक अंग्रेज़ी पढ़ाते हों उनकी अंग्रेज़ी में बुनियादी दक्षता होनी चाहिए। हर शिक्षक में यह कौशल होना चाहिए कि वह परिस्थिति व स्तर के अनुसार उपयुक्त तरीके से अंग्रेज़ी पढ़ा सके। इसके लिए विविध प्रकार की सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए ताकि पाठ्यचर्या निवेश-समृद्ध हो और अर्थ पर ज़ोर दे।

भाषा-संबंधी मूल्यांकन को किसी विशेष पाठ्यक्रम के संदर्भ में उपलब्धियों से नहीं बाँधना चाहिए, बल्कि उसे भाषा दक्षता के मापने में पुनःनियोजित किया जाना चाहिए। मूल्यांकन को बाधा के रूप में देखने के बजाए अधिगम की समर्थक प्रक्रिया के रूप में देखने की ज़रूरत है। शिक्षार्थी की प्रगति का निरंतर आकलन होना चाहिए और पोर्टफोलियो के रूप में उसका लेखन रखना चाहिए। भाषा क्षमता में राष्ट्रीय मानदण्डों को विकसित करने की ज़रूरत है जिसके बाद वैकल्पिक अंग्रेज़ी भाषा के परीक्षणों का एक समुच्चय बनाया जाए जिससे पाठ्यचर्या में आज़ादी और मूल्यांकन के मानकीकरण के बीच संतुलन हो। इससे अंग्रेज़ी की मौजूदा समस्या को हल करने में मदद मिलेगी क्योंकि कक्षा 10 की असफलता में अंग्रेज़ी एक मुख्य कारण है। विद्यार्थी को अंग्रेज़ी के बिना भी पास होने की इजाज़त दी जा सकती है अगर नियमित स्कूली व्यवस्था के बाहर अंग्रेजी दक्षता के लिए सर्टिफिकेट देने के लिए (अनुदेशन देने के लिए) वैकल्पिक व्यवस्था बनाई जाए।

3.1.4 पढ़ना–लिखना सीखना

हालांकि हम भाषा के विभिन्न कौशलों को एकीकृत रूप में पढ़ाने की प्रस्तावना की ज़ोर-शोर से वकालत करते हैं लेकिन कई मामलों में स्कूल को पठन और लेखन पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है, खासकर घरेलू भाषाओं के संदर्भ में। दूसरी, तीसरी या शास्त्रीय या विदेशी भाषा के संदर्भ में वाचिक दक्षता सहित सभी कौशल महत्वपूर्ण हो जाते हैं। बच्चे सर्वांगीण परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं जिनमें बच्चों को सार्थकता दिखती है

बजाय एक योगात्मक या बँधे बँधाए ढर्रे से जिसमें कोई अर्थ नहीं होता। समृद्ध और व्याख्यात्मक निवेश भाषा के सभी मुश्किल कौशलों को सीखने के लिहाज से महत्वपूर्ण होते हैं। कई प्रकार की संवाद स्थितियों में, जैसे फोन पर किसी को सुनकर संदेश को दर्ज करना, कई कौशल एकसाथ उपयोग में लाने पड़ते हैं। हम सचमुच चाहते हैं कि बच्चे समझ के साथ पढ़ें-लिखें। भाषा — कौशलों के पुंज के रूप में, चिंतन और अस्मिता के रूप में स्कूल के सभी विषयों में मौजूद है। बोलना और सुनना, पढ़ना और लिखना सभी सामान्य कौशल हैं और उनमें बच्चों की दक्षता, स्कूल में उनकी सफलता को प्रभावित करती है। कई स्थितियों में इन सभी कौशलों को एक साथ उपयोग में लाने की ज़रूरत होती है। इसलिए स्कूल स्तर पर भाषा का शिक्षण सभी की चिंता का कारण होना चाहिए, न कि केवल भाषा शिक्षक का दायित्व। साथ ही, भाषा के साथ जुड़े कौशलों को केवल प्राथमिक स्तर पर ही नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए, बल्कि जैसे-जैसे विषय में नयी आवश्यकताएँ पैदा हों उनको माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों तक ले जाना चाहिए। जीवन संबंधी कौशल, जैसे आलोचनात्मक चिंतन का कौशल, अन्य लोगों के साथ संप्रेषण के कौशल, तोलमोल करने/मना करने के कौशल, निर्णय लेने या समस्या सुलझाने के कौशल, और परिस्थितियों से निपटने तथा स्वयं की व्यवस्था आदि के कौशलों का रोज़मर्रा के जीवन की चुनौतियों और माँगों के संदर्भ में बड़ा महत्व होता है।

परंपरागत रूप से प्रशिक्षित भाषा-शिक्षक बोलने के प्रशिक्षण को, भाषा के सहभागी और अभिव्यक्तिमूलक कौशल पर ज़ोर देने के बजाय शुद्धता से जोड़ता है। इसीलिए कक्षा में बोलने को हमारी व्यवस्था में नकारात्मक मूल्य समझा जाता है और शिक्षक की काफ़ी ऊर्जा बच्चों को शांत कराने या उनके उच्चारण को ठीक करने में चली

बच्चे पढ़ना क्यों नहीं सीखते?

- शिक्षक शिक्षाशास्त्र के बुनियादी कौशलों में कमज़ोर होते हैं, यानी इस समझ की उनमें कमी पाई जाती है कि कहाँ विद्यार्थी समझा रहा है, कहाँ उपयुक्त प्रश्न पूछ रहा है। पढ़ना सीखने की प्रक्रिया की समझ का उनमें अभाव होता है जिसमें नीचे से ऊपर की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है, जिसमें पहचान और पाठ के अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया शामिल होती है। उनमें कई बार कक्षा प्रबंधन के कौशलों का भी अभाव होता है। उनका ध्यान गलतियों पर अधिक होता है न कि कल्पनाशीलता और अभिव्यक्ति पर।
- सेवा-पूर्व प्रशिक्षण शिक्षकों को पठन के शिक्षा-शास्त्र की तैयारी के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं देता, न ही सेवा-काल प्रशिक्षण में ही इस मुद्दे पर ध्यान दिया जाता है।
- पाठ्यपुस्तकें तदर्थ आधार पर तैयार की जाती हैं जिसमें पठन को लेकर कोई सुसंगत नीति नहीं होती।
- वंचित पृष्ठभूमि के बच्चे, विशेषकर प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थी, शिक्षकों द्वारा स्वयं को स्वीकार्य नहीं समझते और स्वयं को पाठ्यपुस्तकों से जोड़ नहीं पाते।

पठन शुरू करने का कारगर उपागम

- कक्षा में छपी हुई सामग्री की बहुतायत हो, संकेतों, चार्ट, कार्य संबंधी सूचना आदि उसमें लगे हों ताकि विभिन्न अक्षरों की ध्वनियाँ सीखने के साथ वे लिखित संकेतों की पहचान भी कर सकें।
- कल्पनाशील निवेशों की ज़रूरत है, जिसे एक योग्य पाठक हाव-भाव से पढ़े, आदि।
- विद्यार्थियों द्वारा बताए गए अनुभवों का लेखन और उनके द्वारा उस लिखित पाठ का वाचन।
- अतिरिक्त सामग्री का पठन : कहानियाँ, कविता आदि।
- प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों को इसका अवसर दिया जाना चाहिए कि वे अपने पाठ स्वयं तैयार करें और स्वयं द्वारा चुने हुए पाठों का कक्षा में योगदान दें।

जाती है। अगर शिक्षक बच्चे के बोलने को बकवास के बदले संसाधन के तौर पर देखे तो यह संभावना बढ़ जाएगी कि विरोध और नियंत्रण का दुष्चक्र बदल कर अभिव्यक्ति और प्रत्युत्तर का चक्र बन जाए। इस संबंध में विस्तृत ज्ञान उपलब्ध है कि कैसे बातचीत को आधार सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। सेवा-पूर्व और सेवा के दौरान प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों का इससे परिचय करवाना चाहिए। पाठ्यपुस्तक और शिक्षक मार्गदर्शिकाएँ तैयार करने वालों को शिक्षकों के लिए इस तरह के निर्देश लिखने चाहिए कि किस प्रकार विषयवस्तु को बच्चों की छोटे समूह में चर्चा द्वारा और ऐसी गतिविधियों के द्वारा आगे प्रवर्तन किया जाए जो बच्चों में तुलना और विपरीतता, आश्चर्य और स्मरण, अटकल और चुनौती तथा मूल्यांकन और पहचान की क्षमता का विकास करे। सुनने के क्रम में, इसी प्रकार गतिविधियों की योजना तैयार कर पाठ्यपुस्तकों और मार्गदर्शिकाओं में उनका समावेश कर महत्वपूर्ण कौशलों और मूल्यों के विकास में काफी कुछ किया जा सकता है। इसके अंतर्गत ध्यान देने की क्षमता, अन्य व्यक्तियों की बात को महत्व देना और जो बोला गया उसका अर्थ-निर्धारण, मुक्त अभिव्यक्ति और कही गई बात पर लचीली परिकल्पना शामिल हैं। ठीक इसी प्रकार, बातचीत की तरह सुनना भी कई जटिल कौशलों का जाल है। स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों में लोककथाएँ और कहानी सुनाना, सामुदायिक गायन और नाटक आते हैं। कहानी सुनाना न केवल शाला-पूर्व शिक्षा के लिए आवश्यक है, बल्कि वह बाद में भी महत्वपूर्ण बना रहता है। कथात्मक विमर्श होने के कारण, मौखिक रूप से कही गई कहानियाँ तार्किक समझ का आधार तैयार करती हैं, साथ ही, ये हमारी कल्पनाशीलता को समृद्ध बनाती हैं और अपने जीवन से अलग परिस्थितियों में भागीदारी की क्षमता का विकास भी करती हैं। कल्पनाशीलता और रहस्यात्मकता का बच्चे के विकास में बड़ा योगदान होता है। भाषा शिक्षण के एक पहलू के रूप में सुनने की कला का भी विकास संगीत की मदद से किया जाना चाहिए, जिसमें लोक, शास्त्रीय और लोकप्रिय सभी रचनाएँ शामिल हों। लोकगीतों और संगीत को भाषा की पाठ्यपुस्तकों में भी स्थान मिलना चाहिए तथा उनको अभ्यास और गतिविधियों की मदद से विकसित किया जाना चाहिए।

जबकि पठन को भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण अवयव माना जाता है, स्कूली पाठ्यक्रम सूचनाओं और रटंत पाठों से इतने भरे होते हैं कि सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ने का आनंद कहीं दूर छूट ही जाता है। पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है, और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिए। इसके लिए स्कूल और सामुदायिक स्तर पर पुस्तकालयों को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। यह मान्यता कि कथा-उपन्यास पढ़ना समय नष्ट करना है पठन को हतोत्साहित करने का बड़ा कारण है। सभी स्कूली विषयों और स्कूल के सभी स्तरों पर पूरक पठन सामग्री का विकास और उनकी आपूर्ति की तत्काल आवश्यकता है। इस प्रकार की काफी सामग्री, बाजार में उपलब्ध है यद्यपि उनकी गुणवत्ता में काफी अंतर है, परन्तु उनका कक्षा में पठन-पाठन के दौरान उपयोग किया जा सकता है। कक्षा में व्यवस्थित रूप से ऐसी सामग्री का उपयोग किया जाए तो विषयों के शिक्षण में विस्तार होगा। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को ऐसी सामग्री से परिचित कराए जाने की आवश्यकता है और उन्हें ऐसे मानदंड बताए जाने की ज़रूरत है ताकि वे प्रभावी ढंग से पठन सामग्री का चुनाव और उपयोग कर सकें।

लिखने का महत्व सर्वविदित है, लेकिन पाठ्यचर्या में इसको लेकर नवाचार अपनाने की ज़रूरत है। शिक्षकों का ज़ोर इस पर होता है कि

बच्चे सही तरीके से लिखें। लिखने के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता। ठीक जैसे समय से पहले सही उच्चारण का बोझ, बच्चे के खुलकर अपनी बोली में बात करने की क्षमता को कुण्ठित करता है, उसी तरह मशीनी रूप से शुद्ध लिखने की मांग विचारों को अभिव्यक्त करने में बाधा बनती है। शिक्षकों को इस रूप में प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है कि वे लेखन को एक कला की तरह समझें, न कि कार्यालयी कौशल की तरह। आरंभिक वर्षों में, लिखने की क्षमता का विकास, बोलने, सुनने और पढ़ने की क्षमता की संगति में होना चाहिए। स्कूल में माध्यमिक और उच्चतर स्तर पर नोट तैयार करने को कौशल विकास के प्रशिक्षण के तौर पर देखा जाना चाहिए। आगे चलकर इससे श्यामपट्ट, पाठ्यपुस्तकों और कुंजी से टीपने की प्रवृत्ति हतोत्साहित होगी। ऐसे प्रयास भी आवश्यक हैं जिनसे पत्र-लेखन और निबंध लेखन की घिसी-पिटी गतिविधियों पर रोक लगाकर शिक्षा में कल्पना और मौलिकता को महत्वपूर्ण भूमिका दी जाए।

3.2 गणित

गणित की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे की गणितीकरण की क्षमताओं का विकास करना है। स्कूली गणित का सीमित लक्ष्य है 'लाभप्रद' क्षमताओं का विकास, विशेषकर अंक ज्ञान-संख्या से जुड़ी क्षमताएँ, सांख्यिक संक्रियाएँ, माप, दशमलव व प्रतिशत। इससे उच्च लक्ष्य है बच्चे के साधनों को विकसित करना ताकि वह गणितीय ढंग से सोच सके व तर्क कर सके, मान्यताओं के तार्किक परिणाम निकाल सके और अमूर्त को समझ सके। इसके अंतर्गत चीजों को करने और समस्याओं को सूत्रबद्ध करने व उनका हल ढूँढ़ने की क्षमता का विकास करना आता है।

इसके लिए ऐसी पाठ्यचर्या चाहिए जो महत्वाकांक्षी हो, सुसंगत हो और गणित के महत्वपूर्ण सिद्धांतों को पढ़ाए। उसे महत्वाकांक्षी इस अर्थ में होना चाहिए कि वह उपरोक्त उच्च लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करे न कि केवल सीमित लक्ष्य की प्राप्ति का। इसे सुसंगत होना चाहिए ताकि टुकड़े-टुकड़े में उपलब्ध विभिन्न प्रणालियाँ व शिक्षा (अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित में) एक ऐसी क्षमता में ढल सकें जो माध्यमिक कक्षाओं में आने वाले विज्ञान व सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र की समस्याओं को भी संबोधित कर सके। यह इस अर्थ में महत्वपूर्ण होना चाहिए कि विद्यार्थी ऐसी समस्याओं को हल करने की आवश्यकता को महसूस करें और शिक्षक व विद्यार्थी दोनों ऐसी समस्याओं को हल करने में जो अपना समय और ऊर्जा लगाएँ उसे सदुपयोग मानें। गणित की पाठ्यचर्या के दो मुख्य सरोकार हैं — गणित शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी के दिमाग को आकर्षित करने के लिए क्या कर सकती है, और यह विद्यार्थी के संसाधनों को कैसे सुदृढ़ कर सकती है?

चूँकि गणित माध्यमिक स्कूल तक एक अनिवार्य विषय है, अतः अच्छी गणित शिक्षा का अधिकार प्रत्येक बच्चे को है। यह शिक्षा सुखकर व सहज होनी चाहिए। शिक्षा के भूमंडलीकरण के संदर्भ में, सबसे पहला प्रश्न उठता है, आठ सालों की स्कूली शिक्षा के दौरान बच्चे को कैसा गणित पढ़ाना चाहिए जो उसे केवल उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए ही तैयार न करे बल्कि जीवनभर उसके काम आए। प्राथमिक स्कूल में सिखाए जाने वाले गणित के अधिकतर कौशल उपयोगी होते हैं। बहरहाल, पूर्ववर्णित 'उच्चतर लक्ष्यों' की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या के पुनःअभिमुखीकरण से बच्चे उस समय का बेहतर उपयोग कर सकेंगे जो वे स्कूल में व्यतीत करते हैं। उनकी समस्या हल करने व विश्लेषण करने का कौशल पुष्ट होगा और जीवन में वे विभिन्न तरह की समस्याओं का बेहतर रूप से सामना कर सकेंगे। साथ ही गणित की पाठ्यचर्या

के लंबे-चौड़े आकार (जिसमें एक विषय में दक्षता दूसरे के ज्ञान के लिए आवश्यक होती है) पर दिए

स्कूली गणित शिक्षा की कुछ समस्याएँ

1 बहुत से बच्चे गणित से डरते हैं और इस विषय में असफलता से भयभीत रहते हैं। वे जल्दी ही गणित की गंभीर पढ़ाई से विमुख हो जाते हैं।

2 यह पाठ्यचर्या केवल इससे विमुख होने वालों के लिए ही निराशाजनक नहीं है बल्कि यह प्रतिभाशाली बच्चों के लिए भी कोई चुनौती नहीं पेश करती।

3 समस्याएँ, अभ्यास व मूल्यांकन पद्धति यांत्रिक हैं और दुहरावग्रस्त हैं। इसमें संगणना पर अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। इसमें स्थानिक चिंतन जैसे गणितीय क्षेत्रों को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया है।

4 अध्यापकों में आत्मविश्वास, व तैयारी की कमी है और उन्हें आवश्यक मदद भी नहीं मिल पाती।

जाने वाले ज़ोर को कम करना चाहिए, ताकि एक वृहत्तर पाठ्यचर्या तैयार हो पाए, जिसमें वे विषय ज्यादा हों जो बुनियादी बातों से शुरू होते हैं। यह विभिन्न विद्यार्थियों की ज़रूरतों को बेहतर ढंग से पूरा कर पाएँगे।

3.2.1 स्कूली गणित का दर्शन

- बच्चे गणित से भयभीत होने की बजाए उसका आनंद उठाएँ।
- बच्चे महत्वपूर्ण गणित सीखें; गणित में सूत्रों व यांत्रिक प्रक्रियाओं से आगे भी बहुत कुछ है।
- बच्चे गणित को ऐसा विषय मानें जिस पर वे बात कर सकते हैं, जिससे संप्रेषण हो सकता है, आपस में जिस पर चर्चा कर सकते हैं और जिस पर साथ-साथ काम कर सकते हैं।
- बच्चे सार्थक समस्याएँ उठाएँ और उन्हें हल करें।
- बच्चे अमूर्त का प्रयोग संबंधों को समझने, संरचनाओं को देख पाने और चीजों का विवेचन करने, कथनों की सत्यता या असत्यता को लेकर तर्क करने में कर पाएँ।
- बच्चे गणित की मूल संरचना को समझें: अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित त्रिकोणमिति। स्कूली गणित के सभी मूल तत्व अमूर्त की प्रणाली, संघटन और सामान्यीकरण के लिए पद्धति मुहैया कराते हैं।
- अध्यापक कक्षा में प्रत्येक बच्चे के साथ इस विश्वास के आधार पर काम करे कि प्रत्येक बच्चा गणित सीख सकता है।

समस्या के समाधान की अनेक सामान्य युक्तियाँ स्कूल की विभिन्न अवस्थाओं में सिखाई जा सकती है : अमूर्तता, परिमाणन, सादृश्यता, स्थिति विश्लेषण, समस्या को सरल रूप में बदलना, अनुमान लगाना व उसकी पुष्टि करना – ये समस्या समाधान के

प्रत्यक्षीकरण प्रमाण

क्यों 3×5=5×3?

पाँच के तीन समूह *तीन के पाँच समूह*

अनेक संदर्भों में उपयोगी हैं। जब बच्चे ये विभिन्न युक्तियाँ सीख लेते हैं तो उनके संसाधन समृद्ध हो जाते हैं और वे यह भी सीखते हैं कि कौन सी युक्ति सर्वश्रेष्ठ है। बच्चों को गणित के अन्वेषणात्मक नियमों से परिचय की भी आवश्यकता होती है न

कि केवल इस विश्वास की कि गणित एक 'सटीक विज्ञान' है। परिमाण और हलों का अनुमान भी एक आवश्यक कौशल है। जब एक किसान किसी फसल का अनुमान लगाता है तो अनुमान लगाने के कौशल, जैसे सन्निकटता और इष्टीकरण के कौशलों का उपयोग होता है। स्कूली गणित की इस तरह की उपयोगी बातें सिखाने और उनके परिष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रत्यक्षीकरण और निरूपण ऐसे कौशल हैं जिनको विकसित करने में गणित सहायक हो सकता है। परिमाण, आकार व रूपों का प्रयोग करके स्थितियों का प्रतिरूपण करने में गणित का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग होता है। गणितीय अवधारणाओं को कई तरीकों से निरूपित किया जा सकता है और ये निरूपण विभिन्न संदर्भों में विविध प्रयोजनों का काम करते हैं — यह सब गणित की सामर्थ्य को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए एक भिन्न को बीजगणितीय तौर पर निरूपित किया जा सकता है और एक ग्राफ के रूप में भी। अब अगर अ/ब को एक पूर्ण इकाई के एक अंश के रूप में प्रस्तुत किया गया है तो वह दो अंकों अ तथा ब के भागफल को भी इंगित कर सकता है। भिन्न खण्डों के बारे में यह सीखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भिन्न अंशों के गणित को सीखना।

गणित व अन्य विषयों के अध्ययन के बीच संबंध बनाने की भी आवश्यकता है। जब बच्चे ग्राफ बनाना सीखते हैं तो उन्हें भू-विज्ञान सहित विभिन्न विज्ञानों के कार्यात्मक संबंधों के बारे में सोचने के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए। हमारे बच्चे इस तथ्य के मूल्य को पहचान पाएँ कि गणित, विज्ञान के अध्ययन का एक प्रभावी उपकरण है।

गणित में व्यवस्थित तार्किकता के महत्व पर और प्रबलता से ज़ोर नहीं दिया जा सकता। यह गणितज्ञों की सौष्ठव और सौंदर्य-बोध जैसी अत्यंत प्रिय धारणाओं से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। प्रमाण महत्वपूर्ण है, लेकिन निगमनात्मक (निगमन-आधारित) प्रमाण के साथ बच्चों को यह भी जानना चाहिए कि चित्र व निर्मिति प्रमाण कब प्रदान सकते हैं। प्रमाण देना एक ऐसी प्रक्रिया है जो संशय करने वाले विरोधी पक्ष को आश्वस्त करने के लिए आवश्यक है; स्कूली गणित के माध्यम से प्रमाण को व्यवस्थित तर्क-वितर्क के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तर्क विकसित करने, उसका मूल्यांकन करने, अनुमेयों के निर्माण और उनकी पड़ताल करने की क्षमताओं का विकास स्कूली गणित का लक्ष्य होना चाहिए तथा यह समझ भी होनी चाहिए कि तर्क करने के विभिन्न तरीके होते हैं।

गणितीय संप्रेषण, जो सटीक होता है उसमें सुस्पष्ट भाषा का प्रयोग एवं सख्त संरूपण होता है। ये गणित के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। गणित में पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग सुचिंतित, सचेत और विशिष्ट शैली में होता है। गणितज्ञ इस पर विचार करते हैं कि कौन सी अंकन पद्धति उपयुक्त है क्योंकि अच्छी अंकन पद्धति को विचारों का सहायक माना जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं उन्हें इन प्रथाओं की महत्ता को समझना व उनका प्रयोग करना भी सिखाना चाहिए। उदाहरण के लिए, समीकरण बनाने को भी उतना ही महत्व

समस्या प्रतिपादन

- अगर आप जानते हैं कि 235+367 = 602, तो 234+369 कितने होंगे? आपने उत्तर कैसे ढूँढ़ा?
- 5384 में से कोई एक अंक बदल दीजिए। क्या संख्या बढ़ती है या घटती है? कितनी बढ़ी या घटी ?

मिलना चाहिए जितना उन्हें 'हल करने' को दिया जाता है।

ऐसे कई कौशलों और प्रक्रियाओं की चर्चा करते हुए हमने अभिगमों और क्रियाविधियों की बहुलता की बात की है। ये सभी स्कूली गणित को सिर्फ पढ़ाए गए 'कलन विधि' के इस्तेमाल की तानाशाही से मुक्त करने के लिए ज़रूरी है।

3.2.2 पाठ्यचर्या

पूर्व प्राथमिक स्तर पर सारा अधिगम खेल के ज़रिए होता है, उपदेशात्मक संप्रेषण के ज़रिए नहीं। गिनती को क्रम में रटने की बजाय बच्चों को यह सीखने और समझने की ज़रूरत है कि छोटे समुच्चयों के संदर्भ में नाम के खेल और संख्या में और गिनती एवं मात्रा में क्या जुड़ाव है। एक वक्त में एक आयाम में सरल तुलनाएँ और वर्गीकरण करना और आकार व सममितियाँ पहचानना ऐसे कौशल हैं जो इस स्तर पर सीखे जाने चाहिए। इस स्तर पर, और आगे के स्तरों पर भी बच्चों को अपने विचार व भावनाएँ खुल कर व्यक्त करने के लिए भाषा का इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए न कि पूर्वनिर्धारित तरीकों से व्यक्त करने के लिए।

प्राथमिक स्तर पर बच्चों में गणित के लिए सकारात्मक रुझान और रुचि विकसित करना भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि ज्ञानात्मक कौशल और अवधारणाएँ सीखना। गणितीय खेल, पहेलियां और कहानियाँ सकारात्मक रुझान पैदा करने और गणित को रोज़मर्रा की जिंदगी से संबंध जोड़ने में मददगार हो सकती हैं। यह खयाल रखना ज़रूरी है कि गणित सिर्फ अंकगणित नहीं है। संख्याओं और उनके उपयोग के अलावा आकारों, शैक्षिक समझ, प्रतिरूपों, मापों और आंकड़ों की समझ को भी महत्व देना चाहिए। पाठ्यचर्या में स्पष्टतः सीखने वाले की प्रगति की क्रमिकता को शामिल किया जाना चाहिए जो अवधारणाओं को समझ कर मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाती है। गणनात्मक कौशल के अलावा पैटर्न्स को पहचानने, अभिव्यक्त करने और समझाने पर, या समस्याओं के हल में आकलन करने और अनुमान का इस्तेमाल करने, संबंध पहचानने और संप्रेषण व तर्क की दृष्टि से भाषागत कौशल का विकास करने पर ज़ोर दिया जाए।

उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों को गणित की शक्ति का एहसास तब होता है जब वे उन शक्तिशाली अमूर्त अवधारणाओं का इस्तेमाल करते हैं जो पिछली पढ़ाई और अनुभव को संघटित कर देती हैं। इससे उन्हें प्राथमिक स्कूल में सीखी हुई बुनियादी अवधारणाओं और कौशल की ओर फिर से ध्यान देने और उन्हें मजबूत करने में मदद मिलती है जो कि सार्वजनीन गणितीय साक्षरता की दृष्टि से ज़रूरी है। विद्यार्थी बीजगणितीय संकेतों से परिचित होते हैं और स्थान और आकारों की समस्याएँ हल करने और सामान्यीकरण में उनका उपयोग करना सीखते हैं और उनका माप संबंधी ज्ञान पुख्ता होता है। एक अत्यावश्यक जीवन कौशल है सामान्य सूचनाओं का उपयोग करना। इसमें आंकड़ों का उपयोग, आंकड़ों में प्रस्तुति व उनकी व्याख्या शामिल है। इस स्तर का अधिगम विद्यार्थियों की द्विआयामी व त्रिआयामी समझ तथा कल्पना कौशलों को समृद्ध बनाने का भी अवसर प्रदान करता है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी गणित की संरचना को एक अनुशासन की तरह देखना प्रारम्भ कर देते हैं। वह गणितीय संप्रेषण की मुख्य विशिष्टताओं से परिचित होते हैं, सावधानीपूर्वक परिभाषित पारिभाषिक शब्द और अवधारणाएँ, उन्हें जताने के लिए प्रयुक्त संकेतों का इस्तेमाल, ठीक रूप से अभिव्यक्त पूर्व सर्ग और उन्हें सिद्ध करने के लिए प्रमाण — खासकर रेखागणित के क्षेत्र में ये पहलू स्पष्ट होते हैं। बीजगणित में विद्यार्थी अपनी कुशलता

बढ़ाते हैं जो सिर्फ गणित के प्रयोग के लिए महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उनसे स्वयं गणित के प्रमाण और औचित्य भी मिलते हैं। इस स्तर पर विद्यार्थी सीखी हुई कई अवधारणाओं और कौशल को समस्या सुलझाने की योग्यता में संजोते हैं। गणितीय मॉडलिंग, आंकड़ों का विश्लेषण आदि जो इस स्तर पर पढ़ाए जाते हैं, एक उच्चस्तरीय गणितीय साक्षरता में बदल सकते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर या समूहों में जुड़ाव, दृश्य रचना, सामान्यीकरण की तलाश, अनुमान लगाना और उन्हें सिद्ध करना आदि इस स्तर पर महत्वपूर्ण हैं। उचित उपकरणों, जिसमें ठोस मॉडल्स भी आते हैं जैसे कि गणित प्रयोगशालाओं में पाए जाते हैं तथा कंप्यूटरों के ज़रिए इन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर गणित की पाठ्यचर्या का उद्देश्य विद्यार्थियों में गणित के उपयोग के विस्तृत फलक की पहचान और उन बुनियादी औजारों की समझ विकसित करना है जो उस उपयोग को संभव बनाते हैं। यहाँ गहराई और विस्तार की अक्सर परस्पर-विरोधी माँगों के बीच सावधानी से चुनाव करना ज़रूरी है। एक अनुशासन की तरह गणित के तेजी से विस्तार और उसके उपयोगों का फैलता फलक अधिक व्यापकता की माँग करता है। ऐसे विस्तार के लिए विषयों को उनके गणितीय महत्व से आंका जाना चाहिए। जो विषय दूसरे अनुशासनों के ज्यादा स्वाभाविक हिस्से हैं उन्हें गणित की पाठ्यचर्या से बाहर रखा जाए। विषयों के निरूपण का एक उद्देश्य गणितीय अंतर्दृष्टि और अवधारणाओं को विकसित करना होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में स्वभाविक रूप से रुचि और लगाव जागता रहे।

3.2.3 कंप्यूटर विज्ञान

आधुनिक समाज को गढ़ने में कंप्यूटर और कंप्यूटिंग टैक्नोलॉजी का जो जबर्दस्त प्रभाव है, उससे इस प्रकार की शिक्षित जनता की ज़रूरत पैदा हो गई है जो समाज और मनुष्य जाति की बेहतरी के लिए ऐसी प्रौद्योगिकी का प्रभावी इस्तेमाल कर सके। इसलिए इस बात को समझा जा रहा है कि ज्ञान के इन क्षेत्रों को स्कूली पाठ्यचर्या में जगह मिलनी चाहिए।

सूचना प्रौद्योगिकी (आई टी) पाठ्यचर्या, जिसमें सूचना और कंप्यूटर युग के औज़ारों का उपयोग शामिल है और कंप्यूटर विज्ञान पाठ्यचर्या जिसमें ये औज़ार रचे और गढ़े जाते हैं, इन दोनों के बीच फ़र्क करना ज़रूरी है। इन दोनों की ही स्कूली शिक्षा में जगह है।

हालांकि कई देशों ने कंप्यूटर विज्ञान या सूचना प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्या अपने स्कूलों में लागू किए हैं, लेकिन हमें उन चुनौतियों का खयाल रखना होगा जो भारतीय स्कूली विद्यार्थियों के सामने हैं। पहली चुनौती कंप्यूटर विज्ञान के लिए तकनीकी संसाधनों की कमी की है। संसाधनों के अभाव में 'कंप्यूटर विज्ञान' पढ़ाना (कंप्यूटर-उपयोग की तो बात रहने दें) निरर्थक है। सभी विद्यार्थियों के लिए कंप्यूटर और उसकी संयोजकता उपलब्ध कराना एक बड़ी तकनीकी व आर्थिक चुनौती है। लेकिन कंप्यूटर प्रौद्योगिकियों का बढ़ता प्रभाव देखते हुए हमें इस बुनियादी चुनौती को गंभीरता से लेना होगा और हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और संयोजकता की तकनीकी के मामले में ऐसे व्यावहारिक और कल्पनाशील विकल्प ढूँढ़ने होंगे जो भारतीय शहरी और ग्रामीण स्कूलों के लिए उपयोगी हों।

हमें कंप्यूटर विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी में एक समग्र और सुसंगत पाठ्यचर्या मॉडल को विकसित करने के मुद्दे को भी हल करना होगा। ऐसा मॉडल जो शिक्षा से जुड़े लोगों, प्रशासकों और आम जनता के बीच संवाद का आधार बन सके। कुछ बुनियादी तत्व कई कंप्यूटर विज्ञान व सूचना प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्याओं में एकसमान होते हैं और वे भारतीय स्कूलों में भी लागू हो सकते हैं। पुनरावृत्तीय प्रक्रियाओं और कलन विधि की

अवधारणाएँ, परिकलन से निकलने वाली आम समस्या समाधान की पद्धतियाँ, कंप्यूटर के उपयोग की संभावनाएँ, आधुनिक संसार में कंप्यूटर की जगह और उससे उठने वाले सामाजिक मुद्दे – ये सभी उन बुनियादी तत्वों में शामिल हैं।

3.3 विज्ञान

प्रकृति के अद्भुत एवं विस्मयकारी पहलुओं के प्रति मनुष्य की आरंभिक समय से प्रतिक्रिया रही है, प्रकृति के जैविक एवं भौगोलिक वातावरण का ध्यानपूर्वक अवलोकन, सार्थक प्रतिमानों और संबंधों की खोज, प्रकृति के साथ अंतःक्रिया के लिए नए उपकरणों का निर्माण एवं उपयोग तथा विश्व को समझने के लिए अवधारणात्मक मॉडल्स की रचना। इसी मानवीय उद्यम से आधुनिक विज्ञान का विकास हुआ। मोटे तौर पर कहें, तो वैज्ञानिक पद्धति में कई अंतःसंबद्ध चरण शामिल होते हैंः अवलोकन, बारंबारता और प्रतिमानों की तलाश, प्राक्कल्पना करना, गुणात्मक व गणितीय मॉडल बनाना, अवलोकनों तथा नियंत्रित प्रयोगों द्वारा सिद्धांतों को वैध या गलत साबित करना और प्रयोगों के परिणामों का निगमन करना तथा इनके माध्यम से ऐसे सिद्धांतों, नियमों तक पहुँचना जिनसे प्राकृतिक जगत संचालित होता है। विज्ञान के नियमों को कभी स्थिर सार्वभौमिक सत्य की तरह नहीं देखा जाता। यहाँ तक कि विज्ञान के सार्वभौम और स्थापित समझे जाने वाले सत्यों को भी अन्तरिम ही माना जाता है। नए प्रयोगों और विश्लेषण के आधार पर उनमें बदलाव भी हो सकता है।

विज्ञान गत्यात्मक और निरंतर परिवर्धित ज्ञान का भंडार है जिसमें अनुभव के नए-नए क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। एक प्रगतिशील और भविष्योन्मुखी समाज में विज्ञान सचमुच मुक्तिदायी भूमिका निभा सकता है, इसके सहयोग से लोगों को गरीबी, अज्ञान और अंधविश्वास के दुष्चक्र से

प्रश्न पूछना

''वायु हर जगह है'' यह प्रत्येक स्कूली बच्चा सीखता है। संभवतः विद्यार्थी यह भी जानते हैं कि पृथ्वी के वातावरण में कई गैसें हैं, या यह कि चंद्रमा पर हवा नहीं है। हम खुश हो सकते हैं कि वह थोड़ा विज्ञान तो जानते हैं लेकिन इस बातचीत पर ध्यान दें जो चौथी कक्षा में शिक्षिका व विद्यार्थियों के बीच हुई।

शिक्षिका : ''क्या इस गिलास में हवा है?''
विद्यार्थी (मिलकर) : हाँ!

वह शिक्षिका इस सामान्य कथन से संतुष्ट नहीं थी कि ''हवा हर जगह है'' उसने विद्यार्थियों से इस विचार को एक सरल सी स्थिति पर लागू करने के लिए कहा और अचानक उसने पाया कि उन्होंने कुछ वैकल्पिक अवधारणाएँ तैयार की थीं।

शिक्षिका : अब गिलास को उलटा रख दें। क्या अब भी इसमें हवा है ?

(कुछ विद्यार्थियों ने कहा ''हाँ'', कुछ ने ''नहीं'' और कुछ दुविधा में रहे।)

विद्यार्थी 1 : हवा गिलास के बाहर आ गई!

विद्यार्थी 2 : गिलास में हवा थी ही नहीं।

दूसरी कक्षा में एक शिक्षिका ने जलती मोमबत्ती के ऊपर एक खाली गिलास रखा था और मोमबत्ती बुझ गई थी।

विद्यार्थियों ने एक ऐसी क्रिया की थी जो उनकी स्मृति में दो वर्ष बाद भी स्पष्ट थी लेकिन कम से कम कुछ ने तो इसका गलत निष्कर्ष निकाला था।

कुछ समझाने के बाद शिक्षिका ने फिर विद्यार्थियों से सवाल किए। क्या इस बंद अलमारी में हवा है? क्या मिट्टी में हवा है? पानी में? हमारे शरीर के भीतर? हमारी हड्डियों के अंदर? प्रत्येक सवाल नए विचार लेकर आया और उससे कुछ गलतफहमियाँ दूर हो गईं। यह पाठ कक्षा के लिए भी एक संदेश था : किसी भी कथन को विश्लेषण के बिना स्वीकार न करो। सवाल पूछें। हो सकता है सभी उत्तर न मिलें लेकिन आप इससे अधिक सीखेंगे।

निकाला जा सकता है। विज्ञान और तकनीकी के विकास ने कृषि और उद्योग के परंपरागत स्वरूप को बिलकुल बदल दिया है। आज का मनुष्य तेज़ी से परिवर्तनशील समाज का हिस्सा है जिसमें लचीलापन, नवाचार और रचनात्मकता प्रमुख कौशल समझे जाते हैं। विज्ञान शिक्षा का स्वरूप तय करते हुए इन विविध पहलुओं को ध्यान में रखने की ज़रूरत है। अच्छी विज्ञान शिक्षा बच्चे, जीवन व विज्ञान के प्रति ईमानदार होती है। यह सरल निष्कर्ष विज्ञान पाठ्यचर्या के निम्नलिखित वैध मानकों की ओर इंगित करता है :

1. संज्ञानात्मक वैधता के लिए आवश्यक है कि पाठ्यचर्या की विषयवस्तु, प्रक्रिया, भाषा व शिक्षा-शास्त्रीय अभ्यास आयु के अनुरूप हों और बच्चे की संज्ञानात्मक पहुँच के भीतर आएँ।
2. संज्ञानात्मक वैधता के लिए आवश्यक है कि पाठ्यचर्या बच्चों तक महत्वपूर्ण व वैज्ञानिक विषयवस्तु पहुँचाए। बच्चों के संज्ञानात्मक स्तर तक पहुँचने के लिए अंतर्वस्तु को सरल तो किया जाए लेकिन उसे इतना हलका नहीं बनाया जाए कि मूल जानकारी या तो गलत या निरर्थक हो जाए।
3. प्रक्रिया की वैधता के अंतर्गत आवश्यकता है कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी को उन प्रणालियों व प्रक्रियाओं को अर्जित करने में व्यस्त रखे जो उसे वैज्ञानिक जानकारी के पुष्टिकरण व सृजन करने की ओर बढ़ाएँ तथा विज्ञान में बच्चे की स्वाभाविक जिज्ञासा एवं सृजनशीलता का पोषण हो सके। प्रक्रिया की वैधता एक बेहद महत्वपूर्ण कसौटी है क्योंकि इससे विद्यार्थी को 'विज्ञान किस तरह सीखा जाए' यह सीखने में सहायता मिलती है।
4. ऐतिहासिक वैधता में आवश्यकता है कि विज्ञान की पाठ्यचर्या एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ जानकारी दे ताकि विद्यार्थी यह समझ सकें कि समय के

विद्यार्थी कौन सा जीव विज्ञान जानते हैं?

''ये विद्यार्थी विज्ञान नहीं समझते, ये वंचित पृष्ठभूमि से हैं!'' अक्सर ग्रामीण व आदिवासी पृष्ठभूमि से आए बच्चों के बारे में हम इस प्रकार के मत सुनते हैं। फिर भी देखें कि ये बच्चे अपने दैनिक अनुभवों से क्या-क्या जानते हैं।

जनाबाई सहयाद्रि पर्वत शृंखला में स्थित एक छोटे से गाँव में रहती है। वह चावल व अरहर की खेतों में अपने माता पिता की मदद करती है। कभी-कभी वह अपने भाई के साथ बकरियों को चराने भी ले जाती है। उसने अपनी छोटी बहन के पालन-पोषण में भी मदद की है। आजकल वह हर रोज आठ किलोमीटर पैदल चल कर निकट के माध्यमिक स्कूल में जाती है।

उसका अपने प्राकृतिक वातारण से घनिष्ठ संबंध है। उसने अनेक पौधों का भोजन, दवाई, ईंधन, रँगने के पदार्थ के रूप में काम में लिए है। उसने तरह-तरह के पौधों के विभिन्न अंगों का अवलोकन किया है जो घर में धार्मिक अनुष्ठानों एवं त्योहार मनाने के दौरान काम में लिए जाते हैं। वह वृक्षों के सूक्ष्मतम अंतर को जानती है और आकार, पत्तियों, फूलों, सुगंध व बनावट के आधार पर मौसमी बदलाव को जान लेती है। वह अपने आसपास के लगभग सौ वृक्षों को पहचान सकती है जो उसके जीव विज्ञान के अध्यापक की जानकारी से कहीं अधिक है - वही अध्यापक जो यह मानता है कि जनाबाई एक कमज़ोर विद्यार्थी है।

क्या हम जनाबाई की ऐसी मदद कर सकते हैं ताकि वह अपनी समृद्ध समझ को जीव विज्ञान की औपचारिक अवधारणाओं में बदल सके? क्या हम उसे यह भरोसा दिला सकते हैं कि स्कूल का जीव विज्ञान किसी अमूर्त दुनिया के बारे में जानकारी नहीं देता है जो कठिन भाषा व लम्बे-चौड़े पाठों में निहित है? यह उसी खेत के बारे में है जिसमें वह काम करती है, उन जानवरों के बारे में, जिन्हें वह जानती है और जिनकी देखभाल करती है, उस जंगल के बारे में जिसमें से वह रोज गुजरती है। केवल तभी वह वाकई विज्ञान को समझ पाएगी।

साथ-साथ विज्ञान की अवधारणाएँ कैसे विकसित हुईं। इससे विद्यार्थी को यह समझने में भी मदद मिलेगी कि विज्ञान एक सामाजिक उद्यम है और सामाजिक घटक किस प्रकार विज्ञान के विकास को प्रभावित करते हैं।

5. पर्यावरण संबंधी वैधता के लिए आवश्यक है कि विज्ञान को विद्यार्थियों के स्थानीय व वैश्विक दोनों के वृहद पर्यावरण के संदर्भ में रखा जाए ताकि वह विज्ञान, तकनीक व समाज के पारस्परिक संवाद के क्रम में मुद्दों को समझ सके और उन्हें कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक ज्ञान व कौशल दे सके।
6. नैतिक वैधता के लिए ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या ईमानदारी, वस्तुपरकता, सहयोग, भय व पूर्वग्रह से आज़ादी जैसे मूल्यों को प्रोत्साहित करे और विद्यार्थी में पर्यावरण व जीवन के संरक्षण के प्रति चेतना को विकसित करे।

3.3.1 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या

उपरोक्त मानदंड के हिसाब से पाठ्यचर्या के विभिन्न स्तरों पर उद्देश्य, विषयवस्तु, शिक्षाशास्त्र व मूल्यांकन निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए :

प्राथमिक अवस्था में बच्चे की व्यस्तता अपने चारों ओर की दुनिया की नयी-नयी चीजें खोजने का आनंद उठाने और उनके साथ सामंजस्य बैठाने में होनी चाहिए। इस अवस्था में उद्देश्य यह होना चाहिए कि बच्चे में चारों ओर की दुनिया के प्रति जिज्ञासा को पोषण मिले (प्राकृतिक पर्यावरण, चीजों व लोगों के प्रति); बच्चे को ऐसी गतिविधियों में व्यस्त रखना ताकि वह सूक्ष्म अवलोकन, वर्गीकरण व स्वयं करने वाली गतिविधियों इत्यादि से मूल ज्ञानात्मक कौशल हासिल कर सके; डिज़ाइन व निर्माण, अनुमान व मापन पर ज़ोर देना ताकि वह बाद के स्तरों पर तकनीकी एवं संख्यात्मक कौशल प्राप्त कर सके; और मूल भाषिक दक्षता विकसित करना; जैसे - बोलना, पढ़ना और लिखना केवल विज्ञान के लिए ही नहीं बल्कि विज्ञान के माध्यम से भी। विज्ञान व सामाजिक विज्ञान को 'पर्यावरण अध्ययन' में समाहित करना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य भी एक महत्त्वपूर्ण अंग हो। प्राथमिक अवस्था में नियमित रूप से कोई परीक्षा नहीं होनी चाहिए न ही अंक अथवा श्रेणी मिलनी चाहिए और न ही किसी को फेल करना चाहिए।

उच्च प्राथमिक अवस्था में बच्चे के प्रमुख कार्य परिचित अनुभवों द्वारा विज्ञान के सिद्धांत सीखना, हाथों से सरल तकनीकी इकाइयाँ या मॉडल बनाना (उदाहरण के लिए, वज़न उठाने के लिए पवनचक्की के कार्यकारी प्रतिरूप की रचना) और पर्यावरण व स्वास्थ्य जिसके अंतर्गत प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य भी आता है, के बारे में और अधिक जानकारी हासिल करना होने चाहिए। वैज्ञानिक अवधारणाओं को मुख्यतः गतिविधियों व प्रयोगों द्वारा ही समझाना चाहिए। इस अवस्था में विज्ञान की अंतर्वस्तु को माध्यमिक स्कूल के विज्ञान का सरलीकृत संस्करण नहीं समझना चाहिए। सामूहिक क्रियाकलाप, दोस्तों व अध्यापकों के साथ विमर्श, सर्वेक्षण, आँकड़ों का नियोजन और स्कूल तथा आस-पड़ोस के क्षेत्र में प्रदर्शनियों द्वारा इसका प्रदर्शन शिक्षण प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग होने चाहिए। निरंतर व नियमित 'आकलन' होना चाहिए (इकाई परीक्षा व सत्र अंत की परीक्षा)। 'प्रत्यक्ष' ग्रेड्स की व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए और फेल नहीं करना चाहिए। हर बच्चा जो स्कूल में आठ साल व्यतीत करता है उसे नवीं श्रेणी में प्रवेश पाने के योग्य मानना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा एक संयुक्त विषय के रूप में दी जानी चाहिए, जिसमें उच्च प्राथमिक स्तर से अधिक उन्नत तकनीकी की शिक्षा शामिल हो तथा स्वास्थ्य, जिसमें प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य भी आता है, और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों से संबंधी गतिविधियाँ और

विश्लेषण को उनमें शामिल किया जाना चाहिए। सैद्धांतिक आधारों को तलाशने/जाँचने के लिए व्यवस्थित प्रयोग तथा विज्ञान और तकनीकी से संबंधित स्थानीय महत्त्व की परियोजनाओं को पाठ्यचर्या के महत्त्वपूर्ण हिस्से के रूप में शामिल करना चाहिए।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को अलग-अलग विषयों के रूप में लाना चाहिए जिसमें प्रयोगों/तकनीक तथा समस्या हल करने की प्रक्रिया पर बल दिया गया हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अब तक मौजूदा दो धाराओंः अकादमिक व व्यावसायिक, जिनका पालन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तहत किया जा रहा है, पर पुनर्विचार की ज़रूरत हो सकती है। विद्यार्थियों को अपनी अभिरुचि के विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, हालाँकि प्रत्येक स्कूल में सभी विषयों का उपलब्ध होना संभव नहीं होता। माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक के बीच के गहरे अंतर को हटाने के लिए पाठ्यचर्या के बोझ को तर्कसंगत होना चाहिए। इस स्तर पर, विषय के मुख्य पाठों की, क्षेत्र में हुई वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखते हुए, सावधानीपूर्वक पहचान की जानी चाहिए। उन्हें उपयुक्त सख्ती तथा गहराई से शामिल किया जाना चाहिए। ढेरों विषयों की सतही जानकारी देने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

3.3.2 दृष्टिकोण

भारत में विज्ञान की शिक्षा के जटिल परिदृश्य को देखें तो तीन मुख्य मुद्दे नज़र आते हैं। पहला, विज्ञान शिक्षा आज भी हमारे संविधान में निहित समता के उद्देश्य की प्राप्ति से बहुत दूर है। दूसरा, भारत में विज्ञान की अच्छी से अच्छी शिक्षा भी, दक्षता तो विकसित करती है किंतु रचनात्मकता व अन्वेषण को प्रेरित नहीं करती। तीसरा, भारत में विज्ञान शिक्षा की अधिकतर मूलभूत समस्याओं का आधार है परीक्षा की बोझिल व्यवस्था।

विज्ञान की पाठ्यचर्या का उपयोग सामाजिक बदलाव लाने के उपकरण के रूप में करना चाहिए ताकि आर्थिक, वर्ग, लिंग, जाति, धर्म व क्षेत्र आधारित अंतर कम हो सकें। हमें समता का भाव लाने के एक प्राथमिक माध्यम के रूप में पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग करना ही होगा। ज़्यादातर स्कूली विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भी यही शिक्षा का एकमात्र सुलभ साधन है जो आर्थिक रूप से उनकी पहुँच में होता है। हमें देश में वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक लेखन को प्रोत्साहित करना चाहिए जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के वृहद मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुरूप लिखी जाएँ। इन पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों, सूक्ष्म अवलोकन, प्रयोग आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए और विज्ञान के प्रति एक ऐसे सक्रिय रुख को बढ़ावा देना चाहिए जो बच्चे को उसके आस-पास की दुनिया से जोड़ सके और केवल सूचना-आधारित न हो। इसके साथ कार्य पुस्तिका, सहायक पाठ्य-सामग्री और विज्ञान से संबंधित लोकप्रिय किताबें उपलब्ध करवानी चाहिए। बाल विश्वकोष (एंसाइक्लोपीडिया) बच्चों को उन सूचनाओं व विचारों तक पहुँचने देगा जिनको पाठ्यपुस्तक में शामिल कर बोझ बढ़ाना आवश्यक न हो। बल्कि वह परियोजना कार्य में होने वाले अधिगम को भी समृद्ध बनाएगा। क्षेत्रीय भाषाओं में ऐसी सचित्र सामग्री की बहुत कमी है।

ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान नुक्कड़ों का विकास, वैज्ञानिक किट व प्रयोगशाला उपलब्ध कराना भी विज्ञान की पढ़ाई के लिए समान प्रावधान करने का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.) सामाजिक खाई को पाटने का अहम औज़ार है। आई.सी.टी. का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि यह सूचना, संप्रेषण व संसाधनों को दूर-दराज़ के इलाकों तक पहुँचाए और सभी जगह समान रूप से अवसर उपलब्ध कराए। यदि आईसीटी का उपयोग अध्यापकों व बच्चों द्वारा विश्वविद्यालय

व शोध संस्थानों से संपर्क करने में किया जाय तो वहाँ काम करने वाले वैज्ञानिकों व उनके कार्यों से रहस्य का पर्दा उठाने में सहायता मिलेगी।

मौजूदा विज्ञान शिक्षा की स्थिति में किसी भी तरह के गुणात्मक परिवर्तन के लिए एक निदर्शनात्मक बदलाव की ज़रूरत है। रटने को हतोत्साहित करना चाहिए। भाषा, डिजाइन व संख्यात्मक दक्षता द्वारा खोजबीन की प्रवृत्ति को सुदृढ़ करना चाहिए। स्कूलों द्वारा पाठ्य-सहगामी व पाठ्येत्तर क्रियाओं पर, आविष्कारशीलता व रचनात्मकता के माध्यम से अधिक बल दिया जाना चाहिए, भले ही ये तत्व बाहर की परीक्षा व्यवस्था का भाग न हों। इसी तर्ज पर वर्तमान में बाल विज्ञान सम्मेलन को बहुत सफलता मिली है। बाल विज्ञान कांग्रेस जैसी गतिविधियों का बड़े पैमाने पर आयोजन किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर बड़े विज्ञान एवं तकनीकी मेले, समुदाय, जिला, और राज्य स्तर पर भी आयोजित किए जा सकते हैं, जिससे स्कूल और शिक्षकों को इस आंदोलन में सहभागिता के लिए प्रेरित किया जा सके। ऐसा आंदोलन भारत के हर कोने से होकर दक्षिण एशिया तक फैलाना चाहिए ताकि युवाओं व शिक्षकों में रचनात्मकता व वैज्ञानिक प्रवृत्ति की लहर का संचार हो सके।

राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा सुधार का आंदोलन शुरू करना चाहिए, जिसके लिए पर्याप्त धन और उच्चस्तरीय मानव संसाधन जुटाए जाएँ। यह आंदोलन शिक्षकों, शिक्षाविदों व वैज्ञानिकों को एक साझे मंच पर लेकर आए; और, विद्यार्थियों के मूल्यांकन के नए तरीके निकाले जो परीक्षा संबंधी तनाव के स्तर को घटाएँ; प्रवेश परीक्षाओं की बहुलता को नियंत्रित करें; और औपचारिक अकादमिक योग्यताओं को जाँचने की बजाए बहुआयामी सक्षमताओं को जाँचने के तरीकों पर शोध करें।

बहरहाल, इन सुधारों के लिए मूलतः शिक्षकों के सशक्तीकरण में सुधार की आवश्यकता है। कोई भी सुधार चाहे वह कितना ही सुनियोजित व प्रोत्साहक क्यों न हो तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि अध्यापक उसे व्यवहार में लाने के लिए स्वयं को समर्थ महसूस न करे। अध्यापकों की सक्रिय भागीदारी से उपरोक्त सुधारों का स्कूलों में प्रत्येक स्तर के विज्ञान शिक्षण पर ऐसा प्रभाव पड़ सकता है जो लगातार बढ़ता जाए।

3.4 सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत समाज के विविध सरोकार आते हैं। इसकी अंतर्वस्तु बहुत विविध है जिसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान जैसे विषयों की विषयवस्तु समाहित की जाती है। सामाजिक विज्ञान की अनुभूतियाँ और ज्ञान, एक समतामूलक और शांतिमूलक समाज का ज्ञान-आधार तैयार करने की दिशा में अपरिहार्य हैं। सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का लक्ष्य जानी-पहचानी सामाजिक सच्चाई की समीक्षात्मक जाँच तथा उस पर प्रश्न करते हुए विद्यार्थियों में आलोचनात्मक जागरूकता का संवर्धन, होना चाहिए। विद्यार्थियों के अपने जीवन-संदर्भों के संबंध में नए आयामों और नए पहलुओं को जगह दी जा सकती है। एक सार्थक पाठ्यचर्या के लिए सामग्री चयन और उनका निर्धारण, ऐसी पाठ्यचर्या जो विद्यार्थियों में समाज के प्रति आलोचनात्मक समझ का विकास करे, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

चूँकि सामाजिक विज्ञानों को अनुपयोगी विषय समझा जाता है और उनको विज्ञान से कम महत्त्व दिया जाता है, अतः इस पर ज़ोर दिए जाने की आवश्यकता है कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक और विश्लेषणात्मक क्षमता के विकास में मदद करें जिनकी आज की परस्पर-निर्भर होती जा रही दुनिया में आवश्यकता होती है। साथ ही जिससे राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ से जूझने में मदद मिले।

ऐसा माना जाता है कि सामाजिक विज्ञान में केवल सूचनाएँ दी जाती हैं और वे पाठ-केंद्रित

होते हैं। इसलिए विषयवस्तु में परीक्षा के लिए तथ्यों का अंबार लगाए जाने की बजाए उसकी संज्ञानात्मक समझ विकसित किए जाने की आवश्यकता है 'शिक्षा बिना बोझ के' (1993) की अनुशंसाओं को फिर से रेखांकित कर इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि अवधारणाओं की समझ और सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के विश्लेषण की क्षमता के विकास का प्रयास हो, न कि केवल बिना व्याख्या के तथ्यों के रटने पर बल हो।

ऐसी भी मान्यता है कि सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल करने वालों को नौकरी के अधिक अवसर नहीं मिलते। इसके विपरीत, तेजी से बढ़ते सेवा क्षेत्र में सामाजिक विज्ञान की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है और साथ ही, विश्लेषणात्मक और रचनात्मक क्षमताओं के विकास के क्षेत्र में भी।

भारत जैसे बहुलतावादी समाज में यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रीय और सामाजिक समूह पाठ्यपुस्तकों से अपने आपको जोड़ पाएँ। प्रासंगिक स्थानीय विषय-वस्तु सीखने सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा होनी चाहिए, आदर्श रूप में ऐसा स्थानीय संसाधनों पर आधारित गतिविधियों के माध्यम से किया जाना चाहिए।

यह पहचानने की भी आवश्यकता है कि सामाजिक विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों और शारीरिक विज्ञानों की ही तरह वैज्ञानिक दृष्टि होती है। साथ ही यह बताए जाने की भी आवश्यकता है कि किस प्रकार सामाजिक विज्ञानों द्वारा अपनाई गई पद्धतियाँ विशिष्ट होती हैं लेकिन प्राकृतिक विज्ञान से किसी भी रूप में कमतर नहीं।

सामाजिक विज्ञान इस दायित्व का वहन करते हैं कि स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान और विविधता के आदर जैसे मानवीय मूल्यों का सुदृढ़ आधार तैयार हो। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक मानसिक और नैतिक क्षमता का विकास होना चाहिए, ताकि वे उन सामाजिक शक्तियों से सावधान रह सकें जो इन मूल्यों को खतरा पहुँचाती हैं।

जिन विषयों को समाज विज्ञान के तहत माना जाता है, वे हैं इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र। उनकी अपनी विशिष्ट पद्धतियाँ होती हैं जो बहुधा सीमाएँ बाँधने को उचित ठहराती हैं। परन्तु साथ ही, विषयों की परस्परता को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या को समर्थ बनाने के लिए, कुछ ऐसे विषयों को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए जिससे अंतःअनुशासनात्मक चिंतन को बढ़ावा मिले।

3.4.1 प्रस्तावित ज्ञानमीमांसात्मक ढाँचा

उपरोक्त प्रचलित धारणाओं और सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में जिन मुद्दों को संबोधित करने की ज़रूरत है उनको ध्यान में रखते हुए सामाजिक विज्ञानों के अध्यापन को लेकर गठित राष्ट्रीय फोकस समूह ने सामाजिक विज्ञानों के संशोधित पाठ्यक्रमों के लिए कुछ बुनियादी बिंदु सुझाए हैं। पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों जो जिज्ञासा जगाएँ, आगे अध्ययन के द्वार खोलें। विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अध्ययन और अवलोकन में पाठ्यपुस्तक से आगे निकलें।

जैसा कि कोठारी समिति ने ध्यान दिलाया था, सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या अब तक विकासात्मक मुद्दों पर ज़ोर देती रही है। ये महत्वपूर्ण तो हैं पर समानता, न्याय और सम्मान जैसे आदर्शों को समाज और राजनीति में समझने की दिशा में पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। 'विकास' में व्यक्तियों की भूमिका को अक्सर बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है। इस विषय में एक ज्ञानमीमांसात्मक परिवर्तन सुझाया गया है, ताकि भारतीय राष्ट्र को लेकर बहुविध कल्पना को अध्ययन का हिस्सा बनाया जा सके। राष्ट्रीय दृष्टिकोण व स्थानीय दृष्टिकोण में संतुलन होना चाहिए। साथ ही, भारतीय इतिहास को अलग से न पढ़ा कर विश्व के अन्य क्षेत्रों के विकास के संदर्भ भी उसमें शामिल होने चाहिए।

यह सुझाया जाता है कि 'नागरिक शास्त्र' की जगह 'राजनीतिशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाए। 'नागरिक शास्त्र' को भारतीय स्कूली पाठ्यचर्या में अंग्रेज़ी राज में सरकार के प्रति बढ़ती निष्ठाहीनता को देखते हुए शामिल किया गया था। नागरिक शास्त्र में आज्ञाकारिता और निष्ठा पर ज़ोर था। राजनीतिशास्त्र नागरिक समाज को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में देखता है जो संवेदनशील, सवाल उठाने वाले, सोचने-विचारने वाले और बदलाव लाने वाले नागरिक बनाए।

किसी भी ऐतिहासिक और समकालीन विषय पर चर्चा के दौरान जेंडर संबंधी सरोकारों को संबोधित करना ज़रूरी है। इसके लिए सामाजिक विज्ञान में प्रचलित पितृसत्तात्मक मान्यताओं में बदलाव की ज़रूरत है।

बच्चों के स्वास्थ्य और बच्चों के विकास संबंधी बदलावों के सामाजिक पहलुओं; जैसे - माता-पिता से संबंधों में बदलाव, मित्रों, विपरीत लिंग वाले सहपाठियों और वयस्कों आदि के प्रति व्यवहारों में परिवर्तन जैसे मुद्दों को समुचित ढंग से संबोधित करने की आवश्यकता है। बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों और किशोर/युवाओं की समस्याओं को संबोधित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्यक्रम बनाकर समाधान के प्रयास भी आवश्यक हैं।

मानवाधिकार की अवधारणा का संदर्भ सार्वभौमिक है। यह अत्यावश्यक है कि बच्चों को सार्वभौमिक मूल्यों से और ऐसे तरीकों से परिचित कराया जाए, जो उनकी उम्र के अनुकूल हों। रोज़मर्रा के मुद्दों के संदर्भ, जैसे पानी की समस्या आदि की भी चर्चा की जा सकती है ताकि बच्चे मानव सम्मान और अधिकार के मुद्दों के प्रति जागरूक बनें।

3.4.2 पाठ्यचर्या का नियोजन

प्राथमिक स्तरों पर, प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण को गणित और भाषा के अंतरंग भाग की तरह समझाया जाए। बच्चों को ऐसी गतिविधियों में लगाया जाना चाहिए कि वे भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक रेखांकनों के माध्यम से वातावरण को समझ सकें। भाषा इस प्रकार की हो जिसमें जेंडर संवेदनशीलता हो, शिक्षण की विधि सहभागिता और विचार-विमर्श पर आधारित हो।

कक्षा 3 से 5 के लिए पर्यावरण अध्ययन के विषय की शिक्षा दी जानी चाहिए। प्राकृतिक वातावरण के अध्ययन में, उसके संरक्षण और क्षरण से बचाने की आवश्यकता पर ज़ोर होना चाहिए। इससे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में बच्चे गरीबी, बाल श्रम, अशिक्षा, जाति और वर्ग असमानता के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे। विषयवस्तु बच्चों के दैनंदिन अनुभवों और उनके संसार को प्रतिबिंबित कर पाने लायक होनी चाहिए ।

उच्च प्राथमिक स्तर पर, सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र से मिलती है। इतिहास में भारत के अलग-अलग हिस्सों में होने वाले विकास पर ध्यान दिया जाए, जिसमें विश्व के अन्य भागों में हो रहे विकास के भी खंड हों। भूगोल में पर्यावरण, संसाधन तथा स्थानीय से वैश्विक स्तर पर विभिन्न स्तरों के विकास के बीच संतुलन बिठाने का प्रयास किया जा सकता है। राजनीति विज्ञान में विद्यार्थियों का परिचय स्थानीय, राज्य और केंद्रीय स्तर पर सरकार के गठन और उनके कार्यों और सहभागिता की प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं से कराया जाए। अर्थशास्त्र विद्यार्थियों को आर्थिक संस्थानों; जैसे - परिवार, बाज़ार और राज्य की समझ देने पर केंद्रित हो। एक खंड इस प्रकार का हो जिसमें विभिन्न विषयों के अंतरअनुशासनिक अध्ययन पर बल होगा।

माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान के तहत इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र पढ़ाए जाएँगे। इसमें समकालीन भारत पर ध्यान दिया जाएगा और विद्यार्थी में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों

की गहरी समझ बनाने के प्रयास होंगे। प्रस्तावित ज्ञानमीमांसीय बदलाव के आधार पर इनकी चर्चा बहुविध दृष्टिकोण से की जाएगी, जिसमें आदिवासी, दलितों और नागरिक अधिकारों से वंचित जनता के दृष्टिकोण को भी जगह दी जाएगी। प्रयास होगा कि विषयवस्तु को अधिक से अधिक संभव तरीकों से बच्चे के दैनिक जीवन से जोड़ा जाए। इतिहास के अंतर्गत, स्वाधीनता संग्राम सहित आधुनिक भारत के अन्य पहलुओं के साथ विश्व की अन्य मांगों के महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को भी पढ़ा जा सकता है। इतिहास को इस तरह से पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपने विश्व की बेहतर समझ विकसित हो और वे अपनी उस पहचान को भी समझ सकें जो समृद्ध तथा विविध अतीत का हिस्सा रही है। ऐसे प्रयास होने चाहिए कि इतिहास, विद्यार्थियों को विश्व में होते रहे बदलावों और निरंतरता की प्रक्रियाओं की खोज में सक्षम बना पाए और वे यह तुलना भी कर सकें कि सत्ता और नियंत्रण के तरीके क्या थे, और आज क्या हैं। भूगोल की शिक्षा इस बात को

पानी एवं वातावरण	
पानी कहाँ से आता है?	**पानी के प्राकृतिक स्रोत**
समुद्र, महासागर, नदियाँ कैसे बनती हैं?	नदियाँ, झीलें, समुद्र, धरती के नीचे का पानी (या भूजल)
पानी के हमारे स्थानीय स्रोत क्या हैं?	**जल संसाधन मानचित्रीकरण**
कुएं क्यों सूख जाते हैं? हैन्डपम्प कैसे	स्थानीय/क्षेत्रीय/राष्ट्रीय
काम करते हैं?	**मनुष्य निर्मित एवं प्राकृतिक**
	जल स्रोतों के बीच संबंध
क्या बड़े बाँध, छोटे बाँधों की अपेक्षा	भू-जल स्तर, हैन्डपम्प द्वारा सिंचाई, बड़े
ज्यादा लाभदायक हैं?	बाँधों के वातावरण पर होने वाले असर को समझना
रेगिस्तानी इलाकों में लोगों को पानी	**विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों में जल**
कैसे मिलता है?	रेगिस्तानी इलाको में पानी के स्रोत
	पहाड़ी इलाकों में पानी के स्रोत
सूखा पड़ने का क्या कारण है?	सूखा एवं बाढ़
पानी के सामाजिक पहलू	
गाँव के कुएँ को कौन नियंत्रित करता है?	**जाति एवं वर्ग**
	जल स्रोत पर स्वच्छता एवं प्रदूषण नियंत्रण
जल कौन लाता है?	**श्रम का जेंडर विभाजन तथा**
	पानी की उपलब्धता
क्या हमारे पास पर्याप्त मात्रा में पानी है?	पीने एवं सिचाई के पानी को लेकर स्थानीय
	एवं क्षेत्रीय संघर्ष
	बाजार की शक्ति के रूप में पानी
स्वच्छ जल क्यों आवश्यक है?	**स्वास्थ्य**
	शरीर की जल आवश्यकता
	स्वच्छ जल का अधिकार
	जल से उत्पन्न बीमारियाँ।

ध्यान में रखकर दी जानी चाहिए कि बच्चों के मस्तिष्क में संरक्षण और पर्यावरण तथा विकास संबंधी मुद्दों के प्रति आलोचनात्मक परख विकसित हो सके। राजनीति विज्ञान में, भारतीय संविधान के दार्शनिक आधारों पर ध्यान दिया जाए और समानता, उदारता, स्वतंत्रता, न्याय, भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता, सम्मान, बहुलता तथा उत्पीड़न से मुक्ति जैसे मुद्दों की गहराई से चर्चा हो। चूँकि अर्थशास्त्र के अनुशासन को इस स्तर पर आरंभ किया जा रहा है, अतः इसमें लोगों के दृष्टिकोण से विभिन्न विषयों की चर्चा हो।

उच्चतर माध्यमिक स्तर महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विद्यार्थियों को विषयों को चुनने का विकल्प देता है। कुछ विद्यार्थियों के लिए यह स्तर औपचारिक शिक्षा का अंतिम चरण होता है; इसके बाद कुछ विद्यार्थी काम और रोज़गार की दुनिया में निकल पड़ते हैं, तो कुछ दूसरों के लिए यह उच्च शिक्षा का आधार बनता है। वे या तो विशिष्ट अकादमिक पाठ्यक्रम अपनाते हैं या रोज़गार उन्मुख व्यावसायिक पाठ्यक्रम। अतः यहाँ आधार इस तरह तैयार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अपने चुने हुए मार्ग पर सार्थक रूप से कुछ कर सकें। समाज विज्ञान से लेकर वाणिज्य तक अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाते हैं जिनमें से विद्यार्थी अपने पसंद का विषय चुन सकते हैं। विषयों को अलग-अलग 'धाराओं' में नहीं बाँटा जाना चाहिए और विद्यार्थियों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे अपनी पसंद, आवश्यकता और दक्षता के अनुसार विषय का चयन कर सकें। समाज विज्ञान के अंतर्गत राजनीति विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषय होंगे। वाणिज्य के अंतर्गत बिजनेस स्टडीज (व्यापार अध्ययन) और लेखाशास्त्र शामिल हो सकते हैं।

3.4.3 शिक्षाशास्त्र और संसाधनों के अभिगम

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को परस्पर सम्पर्क-संवाद के वातावरण की मदद से पुनर्जीवित कर सीखने वालों को ज्ञान कौशलों को ग्रहण करने का अवसर देना होगा। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में ऐसी विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए जो रचनात्मकता, सौंदर्यबोध तथा आलोचनात्मक समझ बढ़ाएँ और बच्चों को अतीत तथा वर्तमान के बीच संबंध बनाने एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझने में सक्षम करें । समस्या समाधान, नाटकीकरण तथा भूमिका निर्वाह (रोल-प्ले) कुछ ऐसी विधाएँ हैं जो उपयोग में लाई जा सकती हैं, हालांकि उनका अभी तक ज्यादा इस्तेमाल हुआ नहीं है। शिक्षण में श्रव्य-दृश्य सामग्री, तस्वीरें, चार्ट्स, नक्शे तथा पुरातत्ववादी और भौतिक संस्कृतियों की प्रतिकृतियों जैसे संसाधनों का भी उपयोग किया जाना चाहिए।

अधिगम क्रिया को सहभागी बनाने के लिए आवश्यकता ऐसे बदलाव की है जिसमें केवल सूचना देने के स्थान पर वाद-विवाद और चर्चाएँ की जाएँ। सीखने का यह तरीका शिक्षक एवं शिक्षार्थी को सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति सजग करेगा।

व्यक्तियों एवं समुदायों के जीवन के अनुभवों की सहायता से विद्यार्थियों को अवधारणाएँ स्पष्ट की जानी चाहिए। अक्सर यह देखा गया है कि सांस्कृतिक, सामाजिक और वर्ग अंतर कक्षागत संदर्भों में अपने स्वयं के पक्षपात, पूर्वग्रह तथा व्यवहार उत्पन्न करता है। इसलिए शिक्षण के उपागम में खुलापन होना चाहिए। शिक्षकों को कक्षा में सामाजिक वास्तविकता के विभिन्न आयामों के बारे में बात करनी चाहिए, तथा स्वयं एवं विद्यार्थियों में स्व-जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्य करना चाहिए।

3.5 कला शिक्षा

दशकों से शिक्षा व्यवस्था में कला के महत्व पर बार-बार चर्चा हुई है और इसकी अनुशंसा की

जाती रही है, लेकिन इस दिशा में कुछ खास प्रगति नहीं हुई है। अगर अपनी अनूठी सांस्कृतिक पहचान को उसकी विविधता और समृद्धता सहित बचाए रखना है तो औपचारिक शिक्षा में कला शिक्षा को तत्काल समेकित करना होगा। कला

शिक्षा में रंगमंच

रंगमंच एक शक्तिशाली लेकिन शिक्षा में सबसे कम उपयोग में लाया गया कला का रूप है । दूसरों के संबंध में स्व की खोज, स्व की समझ का विकास, आलोचनात्मक सहानुभूति केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि प्राकृतिक, भौतिक एवं सामाजिक विश्व में भी सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

पाठ का नाटकीकरण करना रंगमंच का एक लघु भाग है। इससे अधिक सार्थक अनुभव, भूमिका निर्वाह, रंगमंच अभ्यासों, शरीर और स्वर की गति एवं नियंत्रण सामूहिक एवं सहज प्रदर्शन द्वारा संभव हो सकते हैं।

यह अनुभव शिक्षकों के स्वयं के विकास के लिए तो महत्त्वपूर्ण हैं ही साथ ही बच्चों के लिए भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अध्ययन की दिशा में प्रोत्साहित किए जाने की बजाए हमारी शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थियों और सृजनात्मक दिमागों को कलाओं को अपनाने से हतोत्साहित करती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था कला को 'उपयोगी शौक' या 'मनोरंजक गतिविधि' मात्र मानती है। कला बस स्कूल के स्थापना दिवस, वार्षिक दिवस, गणतंत्र दिवस या स्कूल निरीक्षण के दौरों के अवसर पर प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गई है। इन अवसरों के पहले या बाद स्कूल में विद्यार्थियों को कला से दूर ही रखा जाता है और विद्यार्थियों को उन्हीं विषयों की ओर धकेला जाता है जिन्हें पढ़ना परीक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी होता है। कला की सामान्य समझ धीरे-धीरे न केवल विद्यार्थियों, उनके अभिभावकों और शिक्षकों में, बल्कि नीति निर्माताओं व शिक्षाविदों में भी कम हो रही है।

शीत ऋतु की एक सुबह

शिक्षिका ने बच्चों को प्रातःकालीन दृश्य बनाने के लिए कहा। एक बच्चे ने अपना चित्र पूरा किया और पार्श्व को गाढ़ा कर दिया लगभग सूर्य को छिपाते हुए। "मैंने तुम्हें प्रातःकालीन दृश्य बनाने के लिए कहा था, सूर्य को चमकना चाहिए।" शिक्षिका चिल्ला उठी, उसने यह ध्यान नहीं दिया कि बच्चे की आँखें खिड़की से बाहर देख रही हैं; आज अभी तक अँधेरा था, सूर्य गहरे काले बादलों के पीछे छिपा हुआ था ।

स्कूल और स्कूल प्रशासन एक सतही और लोकप्रिय किस्म की कला को प्रोत्साहन देते हैं और उनका गर्व से प्रदर्शन करते हैं जो मनोरंजक नाच-गानों-नाटकों से भरपूर हों, पर जिसमें सौंदर्यबोध का अभाव हो। हम कला के महत्व की अधिक समय तक उपेक्षा नहीं कर सकते और हमें बच्चों में कला संबंधी जागरूकता व रुचि के प्रसार-प्रोत्साहन के लिए सारे संभावित संसाधन और सारी ऊर्जा लगा देनी चाहिए। भारत में कला, धर्मनिरपेक्षता और सांस्कृतिक विविधता का जीता-जागता उदाहरण है। उसमें देश के हर भाग के लोक और शास्त्रीय गायन, नृत्य, संगीत, पुतले बनाना, मिट्टी का काम आदि शामिल हैं। इनमें से किसी भी कला का अध्ययन हमारे युवा विद्यार्थियों के ज्ञान को न केवल समृद्ध करेगा, बल्कि वह स्कूल के बाहर भी जीवन भर उनके काम आएगा।

दृश्य और प्रदर्शन दोनों ही कलाओं को पाठ्यचर्या में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाए जाने की ज़रूरत है। बच्चे इन क्षेत्रों में केवल मनोरंजन के लिए ही कौशल हासिल न करें बल्कि और भी दक्षताएँ विकसित करें। कला की पाठ्यचर्या के द्वारा विद्यार्थियों का देश की विविध कलात्मक परंपराओं से परिचय करवाना चाहिए। कला शिक्षा आवश्यक रूप से एक उपकरण और विषय के रूप में शिक्षा का हिस्सा (कक्षा 10 तक) हो और हर

विरासत शिल्प पंरपराएँ

हस्तशिल्प एक उत्पादक प्रक्रिया है, एक अद्‌भुत भारतीय तकनीक जो पुरानी नहीं है। इसमें उपयोग में लाई जा सकने वाली सामग्री भारत में उपलब्ध है तथा पर्यावरण हितैषी है। यहाँ जीवंत हस्तशिल्प के कौशलों, तकनीकी, मॉडलों तथा उत्पादों के समृद्ध संसाधन हैं जो कला और काम दोनों पाठ्यचर्या क्षेत्रों के लिए समृद्ध व अत्यावश्यक संसाधन हैं तथा बन सकते हैं। हाथ से काम करना, सामग्री और तकनीकी का उपयोग करना प्रक्रियाओं को समझने में, संसाधन संपन्न होने में, पहल करने में तथा समस्या का समाधान करने में सहायता करता है। ये अनुभव बच्चों के लिए बहुत मूल्यवान होते हैं और किसी अन्य अनुभव के पर्याय नहीं हो सकते । यह क्षेत्र समावेशी शिक्षा के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

हस्तशिल्प को सृजनात्मक तथा सौंदर्यबोध की गतिविधि के रूप में और कार्य की तरह पढ़ाया जाना चाहिए। इसे इतिहास के अध्यापक, सामाजिक विज्ञान तथा पर्यावरण अध्ययन, भूगोल तथा अर्थशास्त्र से जोड़ा जा सकता है। जेंडर, पर्यावरण और समुदाय पर एक दृष्टिकोण का विकास करना 'आलोचनात्मक हस्तशिल्प' अध्ययन का अंग बनाया जाना चाहिए।

- हस्तशिल्प पाठ्यचर्या में कला के भाग के रूप में सृजनात्मकता एवं सौंदर्यबोध के पक्षों पर बल देते हुए जोड़े जा सकते हैं।
- शिल्पकार स्वयं ही हस्तशिल्प के शिक्षक एवं प्रशिक्षक होने चाहिए और हमें ऐसे तरीके तलाशने होंगे जिससे वे विद्यालय में अंशकालिक सेवा दे सकें।
- हस्तशिल्प एक जीवंत, आनुभविक अभ्यास के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।
- यह प्रोजेक्ट के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए न कि कक्षागत अभ्यासों के रूप में ।
- विभिन्न हस्तशिल्पों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या सामग्रियों की योजना बनाई जानी चाहिए; संसाधन; जैसे- मॉडल पुस्तकें, स्रोत पुस्तकें, उपकरण निर्देशिकाएँ, मॉडल तथा हस्तशिल्प नक्शे।
- उपयुक्त सामग्रियों तथा उपकरणों के साथ हस्तशिल्प प्रयोगशालाएँ विकसित करने की आवश्यकता है ।
- हस्तशिल्प मेले आयोजित किए जा सकते हैं ताकि बच्चों का हस्तशिल्पकारों, हस्तशिल्प परंपराओं से परिचय हो और उनके तथा सृजनात्मक प्रयत्नों को प्रदर्शित किया जा सके।

स्कूल में इससे संबंधित सुविधाएँ हों। कला के अंतर्गत — संगीत, नृत्य, दृश्य-कला और नाटक — चारों को शामिल किया जाना चाहिए। कला के महत्त्व के संबंध में अभिभावकों, स्कूल अधिकारियों और प्रशासकों को अवगत कराए जाने की ज़रूरत है। कला शिक्षण में ज़ोर सीखने पर हो न कि सिखाने पर और इसमें दृष्टि सहभागिता पर आधारित हो।

स्कूल के सालों के दौरान, हर स्तर पर, कला के विविध माध्यम और स्वरूप बच्चों को खेल-खेल में तथा विषयबद्ध रूप में विकसित होने में मदद करते हैं, उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। संगीत, नृत्य और नाटक विद्यार्थियों के आत्मबोध उनके ज्ञानात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक स्तरों पर ये सभी कलाएँ बेहद महत्त्वपूर्ण हैं।

बच्चे भाषा, प्रकृति के रूपों की खोज, स्वयं की और अन्य की समझ आदि को कला के माध्यम से आसानी से विकसित कर सकते हैं। कला की प्रकृति ही ऐसी होती है कि सभी बच्चे उसमें भागीदारी कर सकते हैं।

कला और विरासत शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने के संसाधन हर स्कूल में उपलब्ध होने चाहिए। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में कला गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय हो। नाटक-नृत्य, मूर्तिकला संबंधी कक्षाओं के लिए घंटे-डेढ़ घंटे का समय चाहिए। ज़ोर इस बात पर नहीं हो कि बच्चे वयस्कों के मानकों के हिसाब से कला सीखें या पूर्ण कला का विकास हो, बल्कि कला-शिक्षा के माध्यम से बच्चे को अपने आप विकसित होने का मौका दिया जाए, उन पर अधिक दबाव न डाला जाए। कुछ सालों में शिक्षक की सहायता से विद्यार्थी अपने समर्पण व मेहनत से स्वतंत्र कला परियोजनाएँ प्रस्तुत कर पाएँगे जिसके साथ उनमें सौंदर्यबोध, गुणवत्ता व श्रेष्ठता भी पनप सकेगी।

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तरों पर स्कूलों की कला पाठ्यचर्या में विद्यार्थी को अपनी

रुचि की किसी कला में विशेषज्ञता लेने दी जाए। कला की तालीम लेते और उसका अभ्यास करते विद्यार्थी इस उम्र तक कला व सौंदर्यबोध के संबंध में कुछ सैद्धांतिक ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं, जो ज्ञान के इस क्षेत्र के महत्त्व को गहराई से समझने में मदद करेगा। लोकप्रिय कला चर्चा, विभिन्न प्रकार की कला-परंपराओं व रचनात्मकता की विधाओं से उनको अलग-अलग रुचियों-परंपराओं की जानकारी भी मिल सकेगी। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में उच्च या निम्न कला का उल्लेख न हो, उसमें शास्त्रीय और लोक कला का भेद न हो। इससे वे विद्यार्थी भी तैयार हो सकेंगे जो बारहवीं के लिए कला का विशेष अध्ययन करना चाहते हैं या आगे कला को ही अपना व्यवसाय बनाना चाहते हैं।

कला शिक्षा पर शिक्षकों को अधिक संसाधनात्मक सामग्री दी जाए। शिक्षक-प्रशिक्षण और अभिमुखीकरण में ऐसे महत्वपूर्ण अवयव होने चाहिए ताकि शिक्षक दक्षता से और रचनात्मक ढंग से कला का शिक्षण कर सकें। साथ ही, बाल भवनों, जिन्होंने शहरों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, को जिला और सभी खण्ड के स्तरों पर स्थापित किया जाए। इससे कला और शिल्प संबंधी ज्ञान और अनुभव का अतिरिक्त विकास हो सकेगा और बच्चों को अवसर मिलेगा कि वे किसी कला को प्रत्यक्ष रूप से सीख सकें।

3.6 स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

यह मानी हुई बात है कि स्वास्थ्य पर जैविक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक ताकतों का प्रभाव पड़ता है। बुनियादी आवश्यकताओं; जैसे - भोजन, साफ़ पानी, घर, सफ़ाई और स्वास्थ्य सेवाओं तक जनता की पहुंच स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। किसी आबादी की स्वास्थ्य की स्थिति मृत्यु-दर और पोषक तत्वों की उपलब्धता में परिलक्षित होती है। स्वास्थ्य बच्चे के समग्र विकास का सूचक होता है और यह नामांकन, स्कूल में उपस्थिति और पढ़ाई पूरी करने को प्रभावित करता है। इस संबंध में पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य को लेकर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है जिसमें योग और शारीरिक शिक्षा बच्चे के शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक और मानसिक विकास में अपना योगदान कर सकते हैं।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के दौरान इस देश के ज्यादातर बच्चों को कुपोषण और छूत के रोगों का सामना करना पड़ता है। इसलिए स्कूल में हर स्तर पर इस समस्या से निपटने की ज़रूरत है, विशेषकर कमज़ोर तबके के बच्चों और लड़कियों के मामले में। यह प्रस्तावित किया गया है कि मध्याह्न भोजन (मिड-डे मील) कार्यक्रम और स्वास्थ्य जांच को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जाए और स्वास्थ्य संबंधी-शिक्षा भी दी जाए जो विकास के अलग-अलग चरणों में स्वास्थ्य संबंधी-समस्याओं की जानकारी दे। 1940 के दशक में स्कूलों के लिए विस्तृत स्वास्थ्य कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई गई थी जिसके छह प्रमुख घटक थे - स्वास्थ्य सेवा, स्वच्छ स्कूल पर्यावरण, दोपहर का भोजन, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा इत्यादि। ये घटक बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं और इनको पाठ्यचर्या में शामिल किए जाने की ज़रूरत है। पाठ्यचर्या में योग हाल में जोड़ा गया है। इन सभी घटकों को सामूहिक रूप से विस्तृत स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के रूप में पाठ्यचर्या में लिया जाना चाहिए, न कि आज की तरह टुकड़ों-टुकड़ों में। पाठ्यचर्या के मुख्य अवयव के रूप में खेलों और योग के लिए जो समय निर्धारित है उसे किसी भी परिस्थिति में न तो कम किया जाए न ही समाप्त किया जाए।

इस बात की समझ बढ़ रही है कि किशोरों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं, विशेषकर उनके प्रजनन और यौन संबंधी आवश्यकताओं पर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है। चूंकि इन आवश्यकताओं का संबंध यौन या यौनिकता से है जो सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील मुद्दा है, विद्यार्थियों को उचित सूचना पाने के अवसरों से वंचित रखा जाता है।

चूंकि यौन संबंधी उनकी समझ सुनी-सुनाई बातों, मिथकों या भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर आधारित होती है, वे खतरनाक स्थितियों में पड़ जाते हैं। इससे नशीले पदार्थ या उनमें एचआईवी/एड्स संक्रमण आदि का खतरा बढ़ जाता है। आयु-आधारित और संदर्भ-विशिष्ट हस्तक्षेपों को जगह दी जाए, जो किशोर के यौन स्वास्थ्य से संबंधित हों, ताकि एचआईवी/एड्स और नशे की आदतों से उनको सावधान किया जा सके। इसलिए बच्चों को इस संबंध में ज्ञान बढ़ाने और जीवन के कौशल सिखाने की दिशा में प्रयास आवश्यक हैं, ताकि वे बढ़ती उम्र की समस्याओं से जूझ सकें।

3.6.1 रणनीतियाँ

स्वास्थ्य की बहुआयामी प्रकृति के कारण पाठ्यचर्या में विविध गतिविधियों तथा समाकलन के अनेक अवसर हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना, भारत स्काउट एवं गाइड और एनसीसी की गतिविधियाँ ऐसे ही कुछ क्षेत्र हैं। विज्ञान शरीर, स्वास्थ्य, रोगों और जीवित अवयवों और भौतिक वातावरण के बारे में जानने के अवसर प्रदान करता है। सामाजिक विज्ञान सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में सामुदायिक स्वास्थ्य और संक्रामक बीमारियों के फैलने और उसके इलाज के बारे में अंतर्दृष्टि देता है। इस विषय में करते हुए सीखा जा सकता है और पाठ्यचर्या में नवीन उपागमों को अपनाया जा सकता है।

सर्वांगीण विकास के संदर्भ में इस विषय की उपयोगिता को नीतिगत स्तर पर रेखांकित करने की ज़रूरत है, जिसमें प्रशासकों, स्कूल में अन्य विषयों के शिक्षक, स्वास्थ्य विभाग, अभिभावक और बच्चे भागीदारी कर सकते हैं। इस विषय को स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा का आधार मानकर इसे अनिवार्य विषय के रूप में प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तरों पर लागू किया जाना चाहिए और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एक वैकल्पिक विषय के रूप में। बहरहाल, इसे अन्य विषयों के समान दर्जा दिए जाने की ज़रूरत है, एक ऐसा दर्जा जो इसे अभी प्राप्त नहीं है। पाठ्यचर्या को प्रभावी ढंग से पढ़ाने के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि इसके लिए न्यूनतम स्थान और उपकरण हर स्कूल में हों तथा डॉक्टर और चिकित्सा से जुड़े लोग स्कूल में नियमित तौर पर आएँ। इस क्षेत्र में शिक्षक की तैयारी योजनाबद्ध हो और संयुक्त प्रयास किए जाएँ। इसके विषय क्षेत्रों, जिसमें स्वास्थ्य शिक्षा, शारीरिक शिक्षा और योग आते हैं, को उपयुक्त ढंग से प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों से जोड़ा जाए। वर्तमान शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों की पर्याप्त ढंग से समीक्षा की जाए और उनका उपयोग किया जाए। इसी प्रकार, स्कूल में योग की शिक्षा के लिए उचित पाठ्यक्रम तथा शिक्षक-प्रशिक्षण की पद्धति अपनाई जाए। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि इन पहलुओं को राष्ट्रीय सेवा योजना, स्काउट एवं गाइड और एनसीसी से भी जोड़ा जाए।

'आवश्यकता आधारित उपागम' शारीरिक, मनो-सामाजिक तथा मानसिक पक्षों के विभिन्न आयामों को निर्देशित कर सकता है जिन्हें स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इन सरोकारों की मूल समझ आवश्यक है लेकिन महत्वपूर्ण आयाम यह है कि खेलों, अभ्यासों, वैयक्तिक और सामुदायिक स्वच्छता के साथ व्यावहारिक रूप से जुड़ कर स्वास्थ्य, कौशलों और शारीरिक कुशलक्षेम का विकास किया जाए। स्वास्थ्य और सामुदायिक जीवन में व्यक्तिगत और सामूहिक जिम्मेदारियों पर ज़ोर दिए जाने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय स्तर के कई स्वास्थ्य कार्यक्रम; जैसे- एचआईवी, प्रजनन व बाल स्वास्थ्य, एचआईवी/एड्स, टीबी और मानसिक स्वास्थ्य कई राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम बच्चों को ध्यान में रखकर बचाव के उपाय करने में लगे हैं। बच्चों पर इन कार्यक्रमों

की माँगों को मौजूदा पाठ्यचर्या से भी जोड़ा जाना चाहिए।

अनौपचारिक तौर पर तो योग की पढ़ाई प्राथमिक स्तर से ही शुरू की जा सकती है मगर यौगिक अभ्यास आदि कक्षा छह के बाद ही शुरू किए जाएँ। स्वास्थ्य और स्वच्छता को लेकर बच्चों की शिक्षा का संबंध भी बच्चों के जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से होना चाहिए। स्थानीय स्तर के खेलों को शामिल किए जाने पर ज़ोर होना चाहिए।

कम से कम खण्ड स्तर पर विशेष रूप से स्कूल में उपलब्ध स्थान का उपयोग करते हुए प्रतिभाशाली खिलाड़ियों के लिए स्कूल से पहले और बाद में विशेष तौर पर खेल और प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जानी चाहिए। ऐसा ही छुट्टियों के दौरान भी संभव हो सकता है। यह भी संभव है कि खेल-संबंधी सुविधाओं का विकास किया जाए ताकि खाली समय में बच्चे वहाँ बास्केट बॉल, वॉलीबॉल, थ्रो बॉल और स्थानीय खेलों का आनंद उठा सकें।

3.7 काम और शिक्षा

काम के बारे में सामान्य अर्थों में कहें तो यह एक ऐसी गतिविधि है जो कुछ बनाने या करने की तरफ इशारा करती है। इसका यह भी मतलब होता है कि धन या किसी अन्य वस्तु के बदले किसी और के लिए श्रम। इस प्रकार की कई गतिविधियाँ भोजन तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन और लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की देखरेख से संबंधित हैं। अन्य गतिविधियों का संबंध समाज में प्रशासन और व्यवस्था से है। समाज में इन दो बुनियादी आयामों के अलावा (भोजन उत्पादन और सुचारू व्यवस्था की स्थापना) और भी कई ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनका संबंध मनुष्य के हित से होता है और इसलिए उनको भी काम की श्रेणी में डाला जा सकता है।

इस अर्थ में काम से तात्पर्य हुआ समाज और/या समुदाय के अन्य लोगों के प्रति दायित्व का निर्वाह। इसका यह भी अर्थ है कि समाज में व्यक्ति अपना और अपनी सामर्थ्य का योगदान दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अर्थोपार्जन हेतु कर रहा है। दूसरे, इसका आशय होता है कि किया गया काम सार्वजनिक निष्पादन मानकों के अनुरूप हो। क्योंकि किसी के योगदान का मूल्य दूसरे लोग लगाते हैं। तीसरे, काम का मतलब सामाजिक जीवन में योगदान भी हो सकता है, चाहे वह समाज के लिए कुछ उत्पादन करना हो या सामान्य जीवन को संभव बनाने की कोई गतिविधि। अंतिम बात यह है कि, काम मानव जीवन को समृद्ध बनाता है, क्योंकि यह सम्मान तथा आनंद के नए आयाम सामने रखता है।

हालांकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अक्सर समाज में बच्चों का समाजीकरण भेदभावपूर्ण ढंग से होता है। वयस्क, बच्चों का समाजीकरण एक प्रभावी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान के अनुसार करते हैं। यह पहचानने की ज़रूरत है कि बच्चों और वयस्कों का समाजीकरण एक ही तरह से होता है। हमें यह भी याद रखने की ज़रूरत है कि बंधुआ मजदूरी उत्पीड़नों में से सबसे घटिया उत्पीड़न है। इसलिए इसकी पर्याप्त तैयारी होनी चाहिए कि काम को पाठ्यचर्या का अहम हिस्सा बनाया जाए तो उसमें यह स्थिति नहीं हो कि वह काम बच्चों को लादा हुआ लगे और उनके सीखने की क्षमता इससे प्रभावित हो। रोज़-रोज़ की बार-बार दोहराई जाने वाली गतिविधियाँ जो काम के उत्पादन के नाम पर या काम को जाति या लिंग के आधार पर बाँटने के लिए चलाई जा सकती हैं, को सख्ती से रोका जाना चाहिए। साथ ही, अगर शिक्षक स्वयं उसमें बिना शामिल हुए विद्यार्थियों को काम करने के लिए कहें तो उससे भी पाठ्यचर्या में काम को समेकित करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाएगा। स्कूल में काम की शुरुआत बच्चों के शोषण का माध्यम नहीं बनना चाहिए।

काम बच्चों के लिए सीखने का क्षेत्र भी होता है, चाहे वह घर में हो, स्कूल में या समाज में या काम करने के स्थान पर। बच्चे काम की अवधारणा को दो वर्ष की उम्र से ही समझने लगते हैं। बच्चे अपने अभिभावकों की नकल करते हैं और उनके जैसा करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए यह देखना असामान्य नहीं है कि छोटे-छोटे बच्चे फर्श बुहारने का, या बैठकें करने का, या घर बनाने का, या खाना बनाने का अभिनय करें। कई शिक्षाशास्त्रीय विधियों में काम का उपयोग शैक्षणिक उपकरण के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए, मांटेसरी पद्धति में काम के कौशल और अवधारणाओं को काफी आरंभ से पाठ्यचर्या में जगह दी जाती है। सब्जी काटना, कक्षा साफ करना, बागबानी और कपड़े साफ करना शिक्षण-चक्र का हिस्सा होते हैं। बच्चों की आयु व, योग्यता को ध्यान में रखकर तैयार किया गया उपयोगी काम उनके सामान्य विकास में तो योगदान देता ही है, साथ ही जब उसे विद्यार्थियों के जीवन पर लागू किया जाता है, तो वह उनके लिए मूल्यों, बुनियादी वैज्ञानिक अवधारणाओं, कौशलों और रचनात्मक अभिव्यक्ति के कारक के रूप में काम करता है। बच्चे काम के द्वारा अपनी एक अस्मिता पाते हैं और स्वयं को उपयोगी और महत्वपूर्ण समझते हैं क्योंकि काम उनको अर्थवान बनाता है और इसके माध्यम से वे समाज का हिस्सा बनते हैं और ज्ञान के निर्माण में सक्षम हो पाते हैं।

काम के द्वारा व्यक्ति समाज में अपना स्थान बना पाता है। यह एक शैक्षणिक गतिविधि है जिसमें सबको शामिल करने की संभावना अंतरनिहित होती है। इसलिए, शैक्षणिक माहौल में काम में जुटने के अनुभव से समाज में व्यक्ति स्वयं को मूल्यवान समझता है, क्योंकि काम के कुछ पाने योग्य लक्ष्य होते हैं और इससे अंतर्निभरता का ताना-बाना बनता है। इसके अंतर्गत अनुशासनात्मक ढंग से काम करना शामिल होता है, जिससे आत्म-नियंत्रण, मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण और भावनाओं को काबू में रखने की क्षमता आती है। काम के मूल्य, विशेषकर उन कौशलों के जिनमें अचूक कारीगरी की मांग होती है, को कमतर माना जाता है, जबकि वे उत्कृष्टता पाने और आत्मानुशासन सीखने के माध्यम होते हैं। सामग्री से उभरने वाला अनुशासन (मिट्टी या काष्ठ का काम) अधिक प्रभावी होता है बजाए उस अनुशासन के जो एक व्यक्ति दूसरे पर लादता है। काम में सामग्री या दूसरे व्यक्ति के साथ संपर्क-संवाद (अधिकतर दोनों) शामिल होते हैं जिससे किसी प्राकृतिक वस्तु या सामाजिक संबंधों की समझ बढ़ती है। यह उस शारीरिक कौशल के अतिरिक्त होता है जो किसी ऐसे व्यापार को सीखने के लिए आवश्यक हो, जो रोजी-रोटी का साधन बन सकता है। काम के जिस पहलू का यहाँ ज़िक्र किया गया है उसका संबंध काम के संदर्भ में अर्थ-निर्माण और ज्ञान के सृजन से है। यह एक शिक्षा-संबंधी भूमिका है जो पाठ्यचर्या 'काम' में निभा सकती है।

अगर काम को स्कूली पाठ्यचर्या का अभिन्न हिस्सा बना दिया जाए तो इस तरह के लाभ काम से अर्जित किए जा सकते हैं। अकादमिक वातावरण में काम की शुरुआत में नयी प्रकार की सूझ से रचनात्मकता और काम की प्रकृति के ही बदल जाने की संभावना होती है। ऐसा इसलिए और भी आवश्यक हो गया है क्योंकि भारत के बहुसंख्य परिवारों में घर का कामकाज और पारिवारिक व्यापार, जीवन जीने का तरीका है। लेकिन यह पद्धति बच्चों के समय पर स्कूल के दबाव और रटंत विद्या के कारण बदल रही है। अकादमिक गतिविधियाँ अनुशासनात्मक जकड़न में फँस कर रह जाती हैं। अकादमिक शिक्षा और काम को जब साथ-साथ जोड़ दिया जाए तो उससे अकादमिक ज्ञान में रचनात्मकता और काम के क्षेत्र में भी अधिक सहजता आएगी। एक सहक्रियात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है। इसी तरह से प्रभावी

हैंडपंप की रचना हुई थी। आरंभ में ऊँचा उड़ने वाले प्लास्टिक के बैलून अधिक ठंडे वातावरण से गुजरने के दौरान फट जाया करते थे, तब एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले कामगार ने बताया कि अगर इसमें थोड़ा सा कार्बन पाउडर डाल दिया जाए तो वह सूर्य की रोशनी का संश्लेषण कर कुछ गर्म बना रहेगा। सभी बड़े आविष्कार इसी तरह हुए। एडीसन, फोर्ड और फैराडे इसी वर्ग में आते हैं, या वे जिन्होंने पहले-पहल चश्मा या दूरबीन बनाई। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे कुम्हारों, शिल्पियों, बुनकरों, किसानों और चिकित्सकों को पारंपरिक ज्ञान इसी तरीके से आया है जिसमें व्यक्ति एक साथ शारीरिक श्रम और अकादमिक चिंतन करते रहे हैं। हमें अपनी शिक्षा में ऐसी संस्कृति अपनाने की ज़रूरत है।

हालांकि संसाधनों और शिक्षण सामग्रियों के स्तर पर अभी स्कूल इस लायक नहीं हुए हैं कि काम को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जा सके। काम आवश्यक रूप से अंतरअनुशासनात्मक होता है इसलिए काम को अगर स्कूली पाठ्यचर्या से जोड़ना हो तो अच्छी खासी शिक्षाशास्त्रीय समझ की ज़रूरत होगी जिससे यह समझा जा सके कि काम को अधिगम से कैसे समेकित किया जाए और इसका आकलन एवं मूल्यांकन कैसे हो?

स्कूल की पाठ्यचर्या में काम के संस्थानीकरण के लिए रचनात्मक और साहसिक चिंतन की आवश्यकता होगी जो काम को उपयोगी व उत्पादक सामाजिक कार्य (एसयूपीडब्लू) की जड़ता से तोड़ेगा, जिसके प्रति हमारे शिक्षक और विद्यार्थी संदेहशील हैं। उनका संदेहशील रहना उचित भी है। यह पता लगाने की आवश्यकता है कि किस प्रकार हाशिए पर रहने वाले बच्चे के समृद्ध ज्ञान आधार और कौशल उनके लिए सम्मान का जरिया और दूसरे बच्चों के लिए अधिगम का स्रोत बन सकता है। यह इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि उच्च-मध्यवर्ग के बच्चे अपनी सांस्कृतिक विरासत की जड़ों से कटते जा रहे हैं और शिक्षा तंत्र इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने में केंद्रीय भूमिका निभा रहा है। समाज के व्यापक उत्पादक खण्डों के ज्ञान संग्रह को शिक्षा व्यवस्था के रूपांतरण में उपयोग की संभाव्यता है। काम को 'वैध ज्ञान' रूप में देखने से महिलाओं और प्रभुत्वहीन समूहों के काम की अदृश्यता को जांचने का मौका मिलेगा। यह परीक्षण उस काम के संदर्भ में होगा जिसे समाज में उपयोगी माना जाता है। उत्पादक-कार्य को पाठ्यचर्या का केंद्रीय आधार बनाया जाए तो पाठ्यचर्या की किताबी, सूचना-आधारित और सामान्यतया चुनौती न दी जा सकने वाली पद्धति बदली जा सकती है और बच्चों को जीवन-संबंधी आवश्यकताओं से जोड़ा जा सकता है। काम को इस्तेमाल करने का शिक्षाशास्त्रीय अनुभव बचपन और किशोरावस्था के विभिन्न स्तरों में विकास का एक प्रभावी और समीक्षात्मक औजार बन पाएगा। इसलिए काम-केंद्रित शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा से अलग है।

पूर्व-प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर की स्कूली पाठ्यचर्या का पुनर्गठन करना चाहिए ताकि काम को ज्ञान अर्जन का शिक्षाशास्त्रीय माध्यम बना कर मूल्यों व विविध कौशलों का विकास किया जा सके और काम की समस्त शिक्षाशास्त्रीय संभावनाएं हासिल की जा सकें। पाठ्यचर्या को यह पहचानना चाहिए कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे काम के संसार में प्रवेश करने की तैयारी की ज़रूरत है और काम-केंद्रित शिक्षाशास्त्र में बढ़ती हुई जटिलताओं के साथ अनुसरण किया जा सकता है लेकिन उसको ज़रूरी लचीलेपन और प्रासंगिकता से समृद्ध भी रखना होगा। काम-आधारित सामान्य दक्षताएँ शिक्षा के हर स्तर पर दी जानी चाहिए। आलोचनात्मक सोच, अधिगम का हस्तांतरण, रचनात्मकता, संप्रेषण के कौशल, सौंदर्यबोध, काम के लिए प्रोत्साहन, सहयोगी क्रियान्वयन के मूल्य, और सामाजिक जवाबदेही व उद्यमशीलता इसमें

शांति की जानकारी के लिए गतिविधियाँ

उम्र 5+ सावधानी से देखभाल करें:

बच्चों को पंक्ति में खड़ा करें ।

उन्हें कागज से बनी केले के पौधे अथवा शाल वृक्ष की एक पत्ती दे दें।

उन्हें कहें कि वे जैसे भी चाहें उस पत्ती को पीछे पंक्ति तक पहुँचने दें। फिर एक बच्चा उस पत्ती को आगे ले आए और फिर से शुरुआत करें। उसके बाद बच्चों से कहा जाए कि वे पत्ती को विभिन्न तरह से पकड़ने के कारण होने वाले नुकसान को देखें ।

यह गतिविधि पत्तियों के बारे में तथा ये किन पेड़ों की पत्तियां है संबंधित बातचीत को बढ़ा सकती है। उस एक पत्ती का नुकसान पूरी प्रकृति का नुकसान है । पत्ती सम्पूर्ण सृजन का प्रतीक है।

उम्र 7+ भावनाएँ बाँटना:

बच्चों को एक गोल घेरे में बैठाएं और पूछें ''उनके जीवन का सबसे खुशी का दिन कौन सा था? क्यों वह दिन बहुत खुशी का था?'' प्रत्येक बच्चे को प्रश्न का उत्तर देने दें । कुछ बच्चों को एक या ज्यादा अनुभवों की भूमिका निर्वाह करने दें। जैसे ही बच्चे भावनाओं की बात करने से थोड़े परिचित हो जाएँ उनसे अधिक कठिन प्रश्न पूछें जैसे कि आपको सच में किस चीज से डर लगता है ? आप ऐसा क्यों महसूस करते हैं? जब आप किसी को लड़ते हुए देखते हैं तो आपको कैसा लगता है ? आपको ऐसा क्यों लगता है? आपको सबसे ज्यादा दुख किस चीज से पहुँचता है? क्यों ?

उम्र 10+ अन्याय को न्याय से दूर करें:

समझाएँ कि विश्व में अन्याय के बहुत सारे कारण हैं । यह भी बताएँ कि न्याय ही विश्व में शांति स्थापित करने का मूल माध्यम है । अन्याय के दो या तीन उदाहरण दें । बच्चों को अधिक उदाहरण देने के लिए कहें। उसके बाद पूछें-अन्याय का क्या कारण था ? आप इसी तरह परिस्थितियों में कैसा महसूस करेंगे ? कुछ बच्चों को उनके उत्तर पूरी कक्षा में बताने दें ?

उम्र 12+ शांति के अधिवक्ता बनें:

बच्चों को कहें कि वे शांति के अधिवक्ता हैं जो देश के लिए शांति के नियम बनाएंगे। उनके द्वारा सुझाए गए 5 महत्वपूर्ण नियमों की सूची बनाएँ। दूसरों द्वारा बताया गया कौन सा नियम आप अपनी सूची में जोड़ना चाहते हैं ? कौन से नियम आप मानना नहीं चाहते ? क्यों नहीं?

शामिल हैं। इसके लिए मूल्यांकन के मानक भी फिर से तय किए जाने होंगे। काम-केंद्रित शिक्षा के प्रभावी और सार्वभौमिक कार्यक्रम के बिना यह संभव नहीं दिखता कि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (और बाद में सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा) कभी सफल हो सकेगी।

3.8 शांति के लिए शिक्षा

हम अभूतपूर्व हिंसा के दौर में जी रहे हैं। इस दौर में असहिष्णुता, कट्टरवाद, विवाद और विस्वरता की निरंतर आशंकाएँ हैं। नैतिक कार्य, शांति और कल्याण कार्यों के सामने नयी चुनौतियाँ पेश आ रही हैं। अनसुलझे विवादों से युद्ध और हिंसा पैदा होती है हालांकि विवाद से हमेशा युद्ध और हिंसा पैदा नहीं होते। हिंसा और युद्ध विवाद की कई संभावित प्रतिक्रियाओं में से हैं । व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्र के संदर्भ में विवाद सुलझाने के लिए अहिंसात्मक उपाय ढूँढ़ने के कौशलों के पोषण की ज़रूरत है। वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुई हिंसा के चलते राष्ट्रीय स्कूली पाठ्यचर्या के ढाँचे के इस दस्तावेज़ में शांति की शिक्षा का स्थान बाध्य रूप से स्पष्ट है। शांति स्थापित करने की दीर्घकालीन प्रक्रिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण आयाम है। इस शांति में सहनशीलता, न्याय, अंतःसांस्कृतिक समझ और नागरिक ज़िम्मेदारियाँ शामिल हैं। हालांकि जिस प्रकार की शिक्षा आज स्कूलों में दी जाती है उससे सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढ़ावा ही मिलता है। इन परिस्थितियों में शिक्षा को पुनर्परिभाषित करने की ज़रूरत है और इसीलिए स्कूली पाठ्यचर्या को प्राथमिकता मिलती है। शिक्षा के मूल्य के रूप में शांति, पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों से जुड़ी हुई है और उनमें निहित मूल्यों की पूरक है और उन्हें जोड़ती है। इसलिए यह एक ऐसा सरोकार है जो पाठ्यचर्या और शिक्षकों दोनों के लिए ही चिंता का विषय बन गया है।

शांति के लिए शिक्षा नैतिक विकास के साथ उन मूल्यों, दृष्टिकोण और कौशलों के पोषण पर बल देती है जो प्रकृति और मानव जगत के बीच सामंजस्य बिठाने के लिए आवश्यक हैं। इसमें जीने का हर्ष, प्रेम, उम्मीद और साहस के आंतरिक संसाधनों के साथ व्यक्तित्व का विकास शामिल है। इसमें मानव अधिकार, न्याय, सहिष्णुता, सहकार, सामाजिक दायित्व, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान शामिल हैं। सामाजिक न्याय शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण घटक है। समानता और सामाजिक न्याय जिसमें गरीबों, वंचितों, शोषितों के उत्पीड़न न किए जाने संबंधी दृष्टिकोण पर ज़ोर हो और जिसमें अहिंसामूलक समाज व्यवस्था के विकास पर ज़ोर हो, उसे शांति शिक्षा का आधार होना चाहिए। इसी तरह, मानव अधिकार शांति की अवधारणा का केंद्रीय आधार है। अगर लोगों के अधिकारों का हनन हो तो शांति का वातावरण नहीं बना रह सकता । मानव अधिकार की बुनियाद गैर-भेदभावपूर्ण आचरण और समता हैं जो समाज में शांति की व्यवस्था कायम करने की दिशा में काम करते हैं। ये मुद्दे आपस में जुड़े हुए हैं। इस प्रकार, शांति के लिए शिक्षा, कई मिले-जुले मूल्यों का योग है।

शांति गतिविधियों के लिए सुझाव

- स्कूल में विशेष क्लबों और रीडिंग रूम की स्थापना की जाए जो शांति संबंधी समाचारों पर और ऐसी घटनाओं पर केंद्रित हों जो सामाजिक न्याय और समानता के विरुद्ध हों।
- ऐसी फिल्मों की सूची तैयार की जाए जो न्याय और शांति के मूल्यों को बढ़ावा देती हों। उन्हें समय-समय पर स्कूल में दिखाया जाए।
- शिक्षा में शांति के प्रयास में मीडिया को सहयोगी बनाया जाए। प्रमुख पत्रकारों को बच्चों को संबोधित करने के लिए बुलाया जाए। बच्चों के विचार कम से कम महीने में एक बार छपें।
- स्कूल में धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के उत्सवों का आयोजन किया जाए।
- ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिससे महिलाओं के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो।

शांति की शिक्षा एक ऐसे सरोकार के रूप में विकसित हो जो समूचे स्कूली जीवन पर छा जाए — पाठ्यचर्या, कक्षा का वातावरण, स्कूल प्रबंधन, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध और स्कूल से जुड़ी तमाम गतिविधियाँ। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या और परीक्षा का इस दृष्टि से मूल्यांकन हो कि कहीं ये विद्यार्थियों में अपर्याप्तता, निराशा, धीरज और असुरक्षा आदि के भावों को बढ़ावा तो नहीं दे रहे हैं। साथ ही, आसपास और मीडिया द्वारा प्रचारित हिंसा का बच्चों के मन पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है उसे सायास दूर कर नैतिक एवं शांतिपूर्ण जीवन के उद्देश्यों के गहरे अर्थों को विकसित किया जाए। शिक्षा सच्चे अर्थ में व्यक्तियों के अपने मूल्यों को स्पष्ट कर पाने में सहायक हो, उनको सजग निर्णय की दिशा में प्रेरित करे, हिंसा के स्थान पर शांति को चुनने के लिए प्रेरित करे, शांति निर्माण की प्रक्रिया से उन्हें जोड़े न कि वे केवल शांति के उपभोक्ता बने रहें।

3.8.1 रणनीतियाँ

नैतिक विकास का मतलब इस तरह के आदेश देना नहीं है कि 'यह करो' और 'यह न करो', बल्कि इसके माध्यम से विद्यार्थी यह सीख सकते हैं कि सही क्या है, दया क्या है और व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में साझे हित में क्या उचित है।

बच्चे जो भी सुनते हैं उसमें से अधिकतर चीजों को समझ पाते हैं, लेकिन अक्सर कथनी और करनी में जो अंतर होता है उस विरोधाभास से सामंजस्य नहीं बिठा पाते। यहाँ तक कि घर में हुआ छोटा-सा विवाद भी बच्चों पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। बड़ों के लगातार विवाद और माता-पिता के टूटते संबंध भय और विषाद का

अन्य जीवों द्वारा किए जाने वाले कार्य

बच्चों से किसी ऐसे जानवर या पक्षी का चुनाव करने को कहें जिसे वे अच्छी तरह जानते हों और फिर उन्हें उनके 'काम' सूचीबद्ध करने के लिए कहें तथा उनसे यह पूछें कि यह काम किसके हैं – पुरुष, स्त्री या बच्चे के? इस प्रकार के श्रम वितरण के कारणों की चर्चा करें और उसके पीछे के तर्क को समझाएँ। फिर उनसे उस शिक्षण के आधार पर कविता या लेख लिखने को कहें और उन्हें कक्षा में पोस्टर के रूप में लगाएँ।

कारण बनते हैं जो थोड़े समय बाद किशोरावस्था में हिंसा के रूप में प्रकट होते हैं। अकादमिक उद्देश्यों से भी अभिभावकों और शिक्षकों को साथ लाने की ज़रूरत है। क्योंकि व्यक्तिगत नैतिकता का विकास केवल अभिभावकों या केवल स्कूल पर ही नहीं छोड़ा जा सकता।

अलग-अलग आयु-समूहों के लिए नैतिक विकास अलग-अलग तरह से होता है। आरंभिक वर्षों में विद्यार्थी अपने आस-पास को समझने और उसके और अपने संबंध में चेतना के विकास में लगे रहते हैं। उनका व्यवहार सजा से बचने और पुरस्कार पाने के प्रति होता है। वे अच्छे-बुरे का अंदाज़ा इससे लगाते हैं कि कौन सी बात मानी गई, कौन सी नहीं। इस स्तर पर, वे बड़ों में जो देखते हैं उसी के अनुरूप नैतिक मूल्यों की अपनी समझ बनाते हैं।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, उनकी तार्किक क्षमताओं का तो विकास काफी हद तक होता है, फिर भी वे इतने परिपक्व नहीं हो पाते हैं कि मान्यताओं और मानकों पर प्रश्न खड़े कर सकें। दूसरों को प्रभावित करने और स्वयं को मज़बूत सिद्ध करने के क्रम में वे कानून तोड़ते हैं। इस चरण में नियमों, प्रतिबंधों, दायित्वों और शिष्टताओं की समीक्षा कर चिंतन को बढ़ावा देते हुए सामूहिक अच्छाई, त्याग, दया और संयम के मूल्यों के प्रति एक अंतर्दृष्टि विकसित की जा सकती है। यह चर्चा और बातचीत के द्वारा हो सकता है। ऐसे प्रयास उन्हें अपने नैतिक आचरण गढ़ने में सहायता करते हैं।

बाद में, जब उनमें अमूर्त चिंतन का पूरी तरह विकास हो जाता है, तो वे तार्किक ढंग से बता पाते हैं कि नैतिक आचरण क्या होता है। इससे ऐसे नैतिक सिद्धांतों की स्वीकृति और उनको आत्मसात किया जा सकता है जो टिकाऊ हों। किसी बाहरी सत्ता के बिना भी नैतिक रूप से बालिग व्यक्ति पूरी तरह से नियमों के अनुरूप काम करता है और जानता है कि संपूर्ण शांति बनाए रखने में इन मूल्यों का क्या योगदान है।

हमारे पुराने और अच्छे शिक्षकों ने कहानियों और संस्मरणों के माध्यम से आध्यात्मिक शिक्षा और सामाजिक संदेश देने को सबसे अच्छा तरीका माना था। साथ ही एक सार्वभौमिक सत्य यह भी है कि चाहे बच्चा कितना ही मंदबुद्धि हो, उसका घरेलू जीवन कितना ही खराब हो, उसके पास कक्षा में बाँटने के लिए कुछ न कुछ अवश्य होता है। शिक्षकों को उसकी उस प्रतिभा और आत्मविश्वास के विकास में योग देना चाहिए और धमकी भरी भाषा और प्रतिकूल शारीरिक भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मूल्यों की शिक्षा का मतलब हमेशा से वांछनीय व्यवहार को प्रेरित करना रहा है। इसका मतलब 'अस्वीकृत' और 'अवांछनीय' व्यवहार और भावनाओं का दमन और खंडन भी रहा है। इस कारण विद्यार्थी अक्सर बिना किसी प्रतिबद्धता के अपनी सही भावना और विचार को छिपाकर बस ज़बानी तौर पर नैतिक मूल्यों की बात करने लगते हैं। अतः ज़रूरत बातचीत से हटकर अनुभवों और चितंन-मनन तक जाने की है जहाँ नैतिक व्यवहार

के लिए कोई भी सरल प्रस्ताव या उपागम नहीं हो सकता बल्कि मानव व्यवहार और रुचि से संबंधित जटिल प्रयोजनों और नैतिक दुविधाओं पर विचार कर उन्हें समझा जाए।

शिक्षक खुद सुविचारित प्रयास कर सकते हैं कि पाठ्य सामग्री और बच्चों के विकास के स्तर के अनुरूप शांति से संबंधित मूल्यों को पठन-पाठन में शामिल कर लें और उन पर लगातार बल दें। उदाहरण के लिए, शिक्षक किसी पाठ में छिपे घटकों का उपयोग सकारात्मक भावों को जगाने के लिए, अनुभवों आदि के आधार पर शांति के मूल्यों को स्थापित करने के लिए, कर सकते हैं। प्रश्न, किस्सा-कहानी, खेलकूद, व्यावहारिक चर्चा, उदाहरणों, रूपकों, मूल्य स्पष्टीकरण के माध्यम से शांति की शिक्षा दी जा सकती है। नैतिक शिक्षा और आचरण व्यक्तिगत, सामाजिक, सामुदायिक और वैश्विक आयामों से जोड़कर सिखाए जा सकते हैं। एक शिक्षक, जो शांति के अध्ययन-अध्यापन की तैयारी कर चुका हो ऐसे अवसरों पर उनके पैमाने और अंतर्संबंधों के बारे में बता सकता है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शांति की शिक्षा को वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किया जा सकता है।

3.9 आवास और सीखना

आवास वह स्थल होता है जहाँ किसी भी जाति को ऐसी परिस्थितियाँ मिलती हैं कि वह पनप पाए। सीखना समस्त पशु-जातियों की अत्यावश्यक क्षमता होती है। जानवर अपने आवास के लक्षणों के बारे में इन रहस्यों को सुलझाते हुए समझते-बूझते हैं कि उनको खाना कहाँ मिलेगा, कहाँ सामाजिक साथी मिलेंगे या कहाँ दुश्मनों से सामना होगा। अतः हमारे पूर्वजों के लिए ज्ञान की शुरुआत अपने आवास की खोज से शुरू हुई थी। लेकिन मानव ने प्रकृति पर अपना नियंत्रण बढ़ाया, उसने इस संसार को अधिक से अधिक अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया। परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य का अपने पर्यावरण पर नियंत्रण बढ़ता गया और वह दुनिया को अपने अनुकूल बनाता गया, वह ज्ञान के इस क्षेत्र से विमुख होता गया। आज ज्ञान का यह क्षेत्र इतना कम हो गया है कि औपचारिक शिक्षा विद्यार्थियों के आवास से पूर्णतः विमुख हो गई है। लेकिन जिस अप्रत्याशित गति से पर्यावरण का क्षरण हो रहा है हमने यह समझना शुरू कर दिया है कि अपने प्राकृतिक आवास की अच्छी तरह देखभाल ज़रूरी है। मानव जाति को इसलिए अपनी जड़ों को समझने की कोशिश में, अपने प्राकृतिक आवास से संगति बिठाने के क्रम में उसकी अच्छी तरह देखभाल की ज़रूरत है। अपनी विषयवस्तु और अभिप्राय में 'आवास एवं सीखना' का विषय पर्यावरण शिक्षा के समान होगा।

पर्यावरण संबंधी इन चिंताओं का बेहतर समाधान इस रूप में किया जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा को विभिन्न विषयों के साथ जोड़ा जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि उससे जुड़ी प्रासंगिक गतिविधियों को पर्याप्त समय मिले। यह दृष्टिकोण सार्थक तरीके से भौतिकी, गणित, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, कला, संगीत इत्यादि के पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु से जोड़ा जा सकता है। जीवन स्थितियों से जुड़ी गतिविधियाँ विद्यार्थियों की रुचि को बाँधे रखने का सार्थक माध्यम बन जाती हैं। उदाहरण के लिए, वर्षा अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से होती है। उसकी विविधता के आंकड़े उपलब्ध हैं जिनको भौतिकी और गणित में कई रोचक गतिविधियों को बढ़ावा देने में उपयोग में लाया जा सकता है। भौतिकी में ऐसे सामान्य प्रयोग करवाए जा सकते हैं जिनमें असमान भूभागों पर द्रव्यों के बहाव के प्रतिमानों को समझ पाएँ या इस बात का प्रदर्शन/निरूपण हो पाए कि हवा ऊपर उठने पर कैसे ठंडी होती है और वर्षा हो जाती है जबकि

नीचे आने से विपरीत प्रभाव होते हैं। गणित में, लंबे समय के, मान लीजिए 50 सालों के आंकड़ों का अध्ययन कर वर्षा में कमी की जानकारी इकट्ठा की जा सकती है और यह आंकड़ा रखने संबंधी परियोजना का आधार बन सकता है। इसी प्रकार कचरा प्रबंधन प्लांट को सार्थक तरीके से रसायनशास्त्र से जोड़ा जा सकता है। साथ ही, स्कूल, पंचायत, नगरपालिकाओं और नगर निगमों के साथ मिलकर जैव-विविधता और उससे जुड़े विषयों का अभिलेखन कर सकते हैं। स्कूल जीव विज्ञान में इस तरह की परियोजना ले सकते हैं कि औषधीय पौधों की उपलब्धता कहाँ है और उनकी क्या उपयोगिता है या जल में खतरे में पड़ी मछली की प्रजातियों का संरक्षण कैसे किया जा सकता है इत्यादि। विभिन्न कला माध्यमों, संगीत, नृत्य और शिल्पकला के माध्यम से लोग पर्यावरण और उससे जुड़े मुद्दों (जानवर, जंगल, नदी, पौधे, इत्यादि) को अभिव्यक्ति देते हैं। इस प्रकार की समझ को अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के जीवन से भी जोड़ा जाए, क्योंकि वे अपनी जीविका के लिए अक्सर प्राकृतिक जैव-विविधता पर निर्भर होते हैं। इस तरह के ज्ञान का अभिलेखन, जैव-विविधता के जन-रजिस्टर की तैयारी का हिस्सा है और विद्यार्थियों को इस तरह के रजिस्टर बनाने की परियोजनाओं में लाभदायक रूप से जोड़ा जा सकता है। स्वास्थ्य शिक्षा के लिए जंगली पौधों के पोषक तत्व, जो आदिवासियों को पूरक पोषण देते हैं, से संबंधित विषयों पर परियोजनाएँ तैयार की जा सकती हैं जो स्वास्थ्य शिक्षा के उपयोगी घटक बन सकते हैं। इसी प्रकार, स्थानीय पर्यावरण का नक्शा तैयार करना, पर्यावरण इतिहास को दर्ज करना तथा पर्यावरण से जुड़े राजनीतिक मुद्दों को भूगोल, इतिहास और राजनीति विज्ञान विषय की परियोजना से जोड़ा जा सकता है। स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जल से जुड़े विवादों को लेकर अनेक प्रकार की गतिविधियाँ एवं परियोजनाएँ आरम्भ की जा सकती हैं।

3.10 अध्ययन और आकलन की योजनाएँ

स्कूल का मतलब कमोबेश पूरे भारत में कक्षा 1 से 10 तक की शिक्षा से होता है, कुछ राज्यों में यह बारहवीं तक होता है, जबकि अन्य राज्यों में ग्यारहवीं और बारहवीं को विश्वविद्यालय-पूर्व अथवा जूनियर कॉलेज शिक्षा के रूप में जाना जाता है। कुछ स्कूलों में 2-3 साल शाला-पूर्व कक्षाएँ भी लगती हैं। स्कूली-शिक्षा का इन चार भागों में विभाजन प्रशासनिक सहूलियत भर नहीं है बल्कि उससे कहीं अधिक है। पाठ्यचर्या निर्माण और शिक्षक की तैयारी के लिहाज से इन चरणों का विकासात्मक औचित्य है। स्तरवार नज़रिए से अगर देखें तो पाठ्यचर्या की योजना और स्कूल की व्यवस्था उन समस्याओं पर काबू पाने में सहायक होते हैं जो कक्षाओं के एकल-श्रेणी होने के मानक से उपजती हैं। इस मानक में बच्चों के उम्र-आधारित समूहीकरण और कक्षा के हिसाब से सीखने-सिखाने के उद्देश्यों का सख्ती से पालन होता है। एक या दो शिक्षकों वाले प्राथमिक स्कूलों की पुनर्कल्पना एक ऐसे शिक्षा समूह के रूप में की जा सकती है, जिसकी विविध अभिरुचियाँ और शैक्षिक आवश्यकताएँ हों बजाए बहुस्तरीय कक्षाओं के जिनके लिए समय-प्रबंधन की तकनीकों की ज़रूरत होती है। बच्चों का आकलन, उन्होंने क्या ज्ञान अर्जित किया- स्कूल में लंबा समय बिताने के बाद होना चाहिए, न कि सालाना आधार पर। इससे बच्चों की सीखने की गति के प्रति अधिक सम्मान का भाव पैदा होगा। न्यूनतम अधिगम स्तर जैसी योजनाओं ने न केवल साल के अंत में आने वाले नतीजों के सख्त पालन पर ज़ोर दिया बल्कि नतीजों को पाठ आधरित बना और संकीर्ण बना दिया हैं। पाठ्यचर्या की विशेषताओं व सरोकारों का

खुलासा करते समय अगर शिक्षण विधि और आकलन को विभिन्न चरणों में देखा जाए तो पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों व सीखने की सामग्री के साथ जोड़ा जा सकता है तथा शिक्षक बच्चों के विकास की ऐसी योजना बना सकते हैं जो क्रमशः उनकी क्षमताओं, दक्षताओं व अवधारणों को पुख्ता बनाएँ।

3.10.1 प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा

प्रारंभिक बाल्यावस्था स्तर, छः से आठ साल तक की उम्र का समय, बहुत ही संवेदनशील और निर्णायक होता है जब जीवन भर के विकास के आधार और समस्त संभावनाओं के द्वार खुलते हैं। जैसा कि शोध से पता चलता है कि मस्तिष्क की संभावनाओं के पूर्ण विकास के लिहाज से ही इसे संवेदनशील कहा जाता है। बाद की प्रवृत्तियों, मूल्यों और ज्ञान की आकांक्षा की नींव भी इसी चरण में पड़ती है। अगर इस चरण में सहयोग न मिले या उपेक्षा बरती जाए तो इसके नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं। कई बार यह परिणाम सुधारे भी नहीं जा सकते। शाला-पूर्व शिक्षा और देखभाल की यह मांग है कि छोटे-छोटे बच्चों की उचित देखभाल हो, उनके सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त अवसर और अनुभव दिए जाएँ। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक विकास एवं विद्यालय के लिए तैयारी शामिल है। एक समग्र और सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि बच्चों की स्वास्थ्य एवं पोषण की ज़रूरतें उनके मनोवैज्ञानिक-सामाजिक और शैक्षणिक विकास से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल की पाठ्यचर्या के ढाँचे और शिक्षाशास्त्र को इस सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य पर आधरित होने की ज़रूरत है जिसमें विकास के विभिन्न क्षेत्रों में, प्रत्येक स्तर पर बच्चों के लक्षणों और अनुभव के अर्थों में उनकी अधिगम की ज़रूरतों को ध्यान में रखा जाए।

यह एक मानी हुई बात है कि बच्चों में सीखने और अपने आसपास की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसलिए शुरुआती वर्षों में अधिगम बच्चों की अभिरुचियों और प्राथमिकताओं के मुताबिक होना चाहिए और बच्चों के अनुभवों में संदर्भित होना चाहिए, न कि औपचारिक रूप से बनाया हुआ। बच्चों को समर्थ बनाने वाला माहौल वह होता है जो बच्चों को विविध प्रकार के अनुभवों की दिशा में प्रेरित कर सके, जो बच्चों को कुछ करने, खुलकर अपने-आपको अभिव्यक्त करने के अवसर प्रदान करे। साथ ही वह सामाजिक संबंधों में रचा बसा हो जिससे उन्हें स्नेह, संरक्षण और विश्वास की अनुभूति हो। खेलकूद, संगीत, गीत, कलाओं तथा अन्य गतिविधियाँ, जो स्थानीय सामग्री, कला और ज्ञान पर आधारित हों, साथ ही, बोलने, स्वयं को अभिव्यक्त करने, अनौपचारिक संपर्क-संवाद के अवसर आदि इस चरण में ज्ञान के आवश्यक अंग हैं। यह आवश्यक है कि शुरुआती वर्षों की शिक्षा में वही भाषा प्रयोग में लाई जाए जिससे बच्चा अपने परिवेश में परिचित हो, वहीं अगर कक्षा बहुभाषी और अनौपचारिक हो तो बच्चों की दूसरी भाषा (अंग्रेज़ी) की जल्द शुरुआत से बच्चे असहज नहीं होते। यह मदद कक्षा 1 से ही शुरू होने वाली उस भाषा को समझने में भी मिलेगी जिसके माध्यम से पढ़ाई होती है क्योंकि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के कार्य-क्षेत्र में जो बच्चे आते हैं उनका समूह बड़ा ही विषमजातीय होता है जिसमें शिशुओं से लेकर नर्सरी के विद्यार्थी होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि उनके लिए आयोजित की गई गतिविधियाँ और अनुभव विकासात्मक दृष्टिकोण से उपयुक्त हों।

बच्चों की असमर्थताओं की जल्द से जल्द की गई पहचान और उपयुक्त प्रेरणा देने से अपंगता से होने वाले अहित को रोकने में काफी मदद मिल सकती है। इस संबंध में सचेत रहने की आवश्यकता है कि इस स्तर पर बच्चों पर जबर्दस्ती लिखने,

पढ़ने और अंकगणित सीखने का दबाव नहीं बनाया जाए, न ही औपचारिक शिक्षा जल्द शुरू की जाए। स्कूल-पूर्व शिक्षा को प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन के लिए प्रशिक्षण केंद्र के रूप में नहीं बरता जाना चाहिए। वास्तव में, सुझाव यह है कि शाला-पूर्व शिक्षा के अंतर्गत 0-8 साल के बच्चों को रखा जाना चाहिए (ताकि आरंभिक प्राथमिक शिक्षा भी इसके अंतर्गत आ सके)। यह इस समझ से प्रस्तावित किया जा रहा है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा और उसकी पद्धतियों-संबंधी समग्र दृष्टिकोण अपनाने से (सर्वांगीण और समेकित विकास, गतिविधि-आधारित शिक्षण, लिखने से पहले भाषा को सुनना और बोलना, घर और स्कूल के बीच सततता और प्रासंगिकता) बच्चों के बचपन के समस्त अधिगमात्मक अनुभवों में मदद मिलेगी और प्राथमिक शिक्षा के चरण की ओर सहजता से बढ़ा जा सकेगा।

प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के कार्यक्रमों में बाहुलता दिखती है, जिसमें सरकारी, गैर-सरकारी (स्वयंसेवी क्षेत्र) और निजी संस्थाएँ विविध तरह की सेवाएँ दे रही हैं। हालांकि इन कार्यक्रमों की पहुँच काफी संकीर्ण है और दी जाने वाली सेवाओं में गुणवत्ता की नज़र से बहुत भिन्नता है और ज़्यादातर वह निम्न कोटि की ही हैं। अधिक बच्चों को, विशेषकर गरीब और समाज के हाशिए पर रहने वाले बच्चों को प्रारंभिक देखभाल के दायरे में शामिल नहीं किया जाता और अक्सर उन्हें उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाता है। शाला-पूर्व के कार्यक्रमों में विभिन्नता है, कहीं पर बच्चों पर बड़ी उबाऊ और नीरस दिनचर्या थोप दी जाती है, तो कहीं औपचारिक, व्यवस्थित शिक्षा में झोंक दिया जाता है, जो अक्सर अंग्रेज़ी में होती है और जिसमें बच्चों की परीक्षाएँ ली जाती हैं। गृहकार्य मिलता है और खेलने का अधिकार ही उनसे छीन लिया जाता है। यह चलन अनावश्यक और नुकसानदेह है जो अभिभावकों की दिग्भ्रमित आकांक्षाओं तथा स्कूल-पूर्व शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण का परिणाम है, जो बच्चों के विकास और सीखने की इच्छा के लिए बहुत ही हानिकर है। इस प्रकार की अधिकांश समस्याएँ इसीलिए पैदा होती हैं क्योंकि शिक्षा की मुख्यधारा में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा आज भी 'अमान्य' ही है। ध्रुवीकृत व्यवस्था हमारे समाज के विभिन्न विभेदों को उजागर भी करती है और उनको बढ़ावा भी देती है। समाज में फैले गहरे लिंग भेद और व्यापक पितृसत्तात्मक मूल्यों के कारण शिशु-सदन और डे-केयर केंद्रों की आवश्यकताओं की पहचान नहीं हो सकी है, विशेषकर गरीब ग्रामीण और शहरी कामकाजी औरतों के मामले में; इस उपेक्षा का लड़कियों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के अच्छे कार्यक्रम का असर बच्चों के सर्वांगीण विकास पर पड़ता है। यह अपने आप में इस माँग का पर्याप्त कारण बनता है कि सभी बच्चों को आरंभिक शिक्षण और लालन-पालन की आवश्यकता है। इसीलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि 0-6 वर्ष के बच्चों को संविधान की धारा 21 के प्रावधानों से बाहर रखा गया है। साथ ही, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का सीधा संबंध बच्चों के स्कूल में नामांकन और शिक्षण के परिणामों से है। सभी बच्चों को एक समान प्रारंभिक बाल्यावस्था-शिक्षा उपलब्ध कराने के लिहाज से केवल यही आवश्यक नहीं है कि इस उद्देश्य के लिए धन आवंटित किया जाए, बल्कि विभिन्न प्रकार की रणनीतियाँ बनाकर गुणवत्ता के पांच बुनियादी आयामों को सुनिश्चित किया जाए- विकासमूलक दृष्टिकोण से उपयुक्त पाठ्यचर्या, प्रशिक्षित और उपयुक्त वेतन प्राप्त शिक्षक, उपयुक्त शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, बच्चों की आवश्यकताओं के अनुकूल साधन-संसाधन तथा ऐसी निरीक्षण विधि जो उत्साहवर्धक हो। जहाँ विकेंद्रीकरण, लचीलेपन और संदर्भपरकता की आवश्यकता है, वहीं इस बात की भी ज़रूरत है कि उपयुक्त

मानक और निर्देशक सिद्धांत विकसित किए जाएँ और एक नियामक ढाँचा लागू हो जिससे बच्चों के विकास में कोई भी समझौता न करना पड़े। सभी स्तरों पर विविध भूमिकाओं के लिहाज से संसाधन तैयार किए जाने की आवश्यकता है तथा यह भी सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि इस दिशा में कार्य करने वालों को उचित भुगतान हो।

3.10.2 आरंभिक शिक्षा

कक्षा 1 से 8 तक की आरंभिक शिक्षा को आजकल अनिवार्य शिक्षा की अवधि के रूप में स्वीकार लिया गया है क्योंकि संवैधानिक संशोधन ने शिक्षा को बुनियादी अधिकार में शामिल कर दिया है। इस चरण के शुरुआत में बच्चे का पढ़ने, लिखने और अंकगणित से औपचारिक परिचय होता है और इस चरण का अंत जैविक-भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों के औपचारिक परिचय से होता है। आठ सालों की यह अवधि वह समय है जब महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक विकास होता है और विवेक को आकार मिलता है, सामाजिक कौशलों, और बुद्धि एवं काम के लिए ज़रूरी कौशलों और अभिवृत्तियों का भी विकास होता है।

जैसे-जैसे सार्वजनीन शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास प्रगाढ़ हो रहे हैं वैसे-वैसे आरंभिक विद्यालयों की ज़िम्मेदारी उन स्कूल जाने वाली उम्र के बच्चों के प्रति बढ़ रही है जो विभिन्न पृष्ठभूमियों से आते हैं। अतः यह ज़रूरी है कि मानकों से समझौता किए बिना इस चरण की शिक्षा विविधता व लचीलापन लिए हुए हो। वह समेकित प्रकृति की हो, जो बच्चों को भाषा और अभिव्यक्ति में सक्षम बनाए। उनमें एक अध्ययनकर्ता होने का आत्मविश्वास जगाए। यह आत्मविश्वास और अभिव्यक्ति स्कूल में और उसके बाहर दोनों जगह के लिए हो।

स्कूल का पहला सरोकार बच्चे की भाषा क्षमता के विकास से है : अभिव्यक्ति और साक्षरता संबंधी क्षमता, भाषा को रचने, सोचने और दूसरों से संप्रेषण में उपयोग की क्षमता के मुद्दे इसमें शामिल हैं। इस बात पर विशेष बल दिया जाना चाहिए कि उन विद्यार्थियों के लिए अधिक से अधिक अवसर हों जो अपनी मातृभाषा के माध्यम से पढ़ना चाहते हैं, इसमें आदिवासियों की भाषाएँ और छोटे भाषा-समूहों की भाषाएँ भी शामिल हैं। चाहे विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम हो फिर भी अपनी मातृभाषा में पढ़ने के मौके होने चाहिए। स्कूली व्यवस्था को इन विकल्पों को बढ़ावा देने, पोषण देने की क्षमता एवं कार्यान्वित करने की कार्यप्रणाली अच्छी शिक्षा देने की क्षमता बढ़ाएँगें। कार्य प्रणाली ऐसी हो जिससे भविष्य के विकल्प खुले रहें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बहुत ही सृजनात्मक और संगठित प्रयास करने की ज़रूरत है जिससे भारतीयों की बहु-भाषिक मेधा बनी रहे और त्रि-भाषीय फार्मूला लागू किया जा सके। इस दौरान अंग्रेज़ी भी पढ़ाई जा सकती है, लेकिन भारतीय भाषाओं की कीमत पर नहीं।

गणितीय चिंतन का विकास, जो गिनती से शुरू होकर अमूर्त विचारों में दक्षता और उनका आनंद उठाने की क्षमता की ओर होता है, उसको ठोस अनुभवों और परिचलनों के साथ काम के अनुभवों के सहारे की ज़रूरत है। इन्हीं शुरू के सालों में कक्षा 4 तक भाषा और गणित में अधिगम की कठिनाइयों को पहचानने और उपचारी काम को संबोधित करने की ज़रूरत है।

इसी प्रकार के ठोस अनुभव पर्यावरण के एकीकृत अध्ययन के लिए भी आवश्यक हैं, जिससे बच्चे का अपना सहजबोध स्कूली ज्ञान के साथ सम्मिलित हो पाएगा। समय के साथ यह अध्ययन एक विषयात्मक उपागम की ओर बढ़ेगा, लेकिन उसमें अध्ययन के समेकित मुद्दे हों और अवधारणाओं के विकास के मौके निहित हों और विषय की कार्य प्रणाली और शब्दावली को सीखने के मौके भी निहित हों।

केवल सौंदर्यबोध के विकास के लिए ही नहीं बल्कि सामग्री के परिचालन को सीखने के लिए

और काम के लिए ज़रूरी अभिवृत्तियों और कौशलों के विकास के लिए भी कला और शिल्प का अध्ययन बहुत ही ज़रूरी है। यह ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या बच्चों को जीवन के व्यावहारिक कौशल सीखने के और विविध प्रकार के कार्यानुभवों के अवसर दे। खेलकूद के माध्यम से शारीरिक विकास भी आवश्यक है। स्कूल की पढ़ाई के इस चरण में कई तरह की गतिविधियों की ज़रूरत है; जैसे – सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना, कार्यक्रम आयोजित करना, स्कूल के बाहर की यात्रा आयोजित करना, सामाजिक और भावनात्मक रूप से एक सृजनात्मक, दूसरों के प्रति संवेदनशील और आत्मविश्वासी इनसान बनने के मौके देना और ज़िम्मेदारी और पहल के योग्य बनने के अवसर देना। ऐसे शिक्षक जिनकी पृष्ठभूमि 'परामर्श और सहयोग' के क्षेत्र में रही है वे बच्चों के विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली गतिविधियाँ तैयार कर सकते हैं, जिससे बच्चों में वांछित सकारात्मक वृत्तियों और स्वयं एवं काम के प्रति वांछित अनुभूतियों की नींव रखी जा सके। वे समाज के विभिन्न स्तरों के बच्चों को आवश्यक सहयोग और परामर्श भी उपलब्ध करा सकते हैं, जिससे उनकी आरंभिक स्कूली पढ़ाई सतत चलती रहे। पाठ्यचर्या का रुख प्रक्रिया-आधारित हो न कि परिणाम-आधारित। विकास के ये सभी अवसर सभी विद्यार्थियों को उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इसका ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्यचर्या प्राथमिकताओं, अभिरुचि और विभिन्न समुदायों के सामर्थ्य को लेकर रूढ़ियों को बढ़ावा देने वाली न हो। इस संदर्भ में, काम के नाम पर धीरे-धीरे व्यावसायिक शिक्षा को अपनाया जाना समावेशी पाठ्यचर्या का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हो सकता है।

3.10.3 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक स्कूल शारीरिक बदलावों और अस्मिता विकास का समय होता है। यह गहन ऊर्जा और जीवंतता का दौर भी होता है। इसी दौरान अमूर्त का उपयोग करके तर्क देने की क्षमता उभरती है जिससे बच्चों में वर्तमान और मौजूदा चीज़ों से आगे बढ़ कर उन चीज़ों से समझ के साथ जुड़ने की क्षमता भी आती है जो सामने नहीं होतीं। इस जुड़ाव में ज्ञान सृजन की क्षमता भी शामिल होती है। इसी अवधि में समाज के संदर्भ में स्वयं की विवेचनात्मक समझ भी उभरती है।

इस स्तर पर पाठ्यक्रम का लक्ष्य विषयों के बारे में जागरूकता बढ़ाना होता है और विद्यार्थियों का उन विषयों के अध्ययन की संभावनाओं और अवसरों से परिचय करवाना भी होता है। इस तरह की गतिविधि से वे अपनी रुचियों और क्षमताओं को पहचान पाते हैं और यह विचार बनाने लगते हैं कि वे आगे चल कर किस तरह का काम करना चाहेंगे और उससे संबंधित किस विषय का अध्ययन करना चाहेंगे। प्रशिक्षित शिक्षकों एवं व्यावसायिक परामर्शदाताओं की मदद से इस तरह की आवश्यकताएँ व्यवस्थित निर्देशन एवं परामर्श संबंधी क्रियाओं द्वारा प्रभावी ढंग से पूरी की जा सकती हैं। बहुत सारे बच्चों के लिए यह समापक चरण भी होता है जिसके बाद वे स्कूल छोड़ देते हैं और कार्य के लिए उत्पादी कौशलों के विकास में जुड़ जाते हैं। सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण जिन बच्चों के लिए यह चरण समापक हो जाता है उन्हें सृजनात्मक और भावी कार्य कौशलों को सीखने के मौकों की ज़रूरत होती है जबकि पूरी व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीनीकरण की ओर अग्रसर होती है। अतः यहाँ पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की सुविधा आवश्यक है, और इस दिशा में संगठित प्रयास करने की ज़रूरत है ताकि सभी विद्यार्थियों को यह सुविधा मिले।

विद्यार्थी दो साल बोर्ड परीक्षा के प्रेत से ग्रसित रहते हैं क्योंकि इन परीक्षाओं के प्राप्तांक भविष्य के विकल्पों को निर्धारित करते हैं। स्कूल अक्सर बड़े गर्व से घोषणा करते हैं कि उनके यहाँ दसवीं

कक्षा के पहले सत्र की समाप्ति तक पाठ्यक्रम पूरा हो जाता है और बाकी के दो सत्रों में दोहराने का काम चलता है ताकि विद्यार्थी परीक्षा के लिए पूरी तरह तैयार हो सकें। इस चरण में नवीं कक्षा और बाद में ग्यारहवीं कक्षा को भी इसी कारण से पूरी तरह से कुर्बान कर दिया जाता है। परीक्षा के इस हौव्वे और अधिगम पर इसके घातक प्रभावों पर दुबारा विचार करने और उसे चुनौती देने की ज़रूरत है। क्या वास्तव में बच्चों के जीवन के सबसे उत्पादी समय में से एक साल इतने गैर उत्पादी काम में बर्बाद करना उचित है? क्या यह संभव नहीं है कि पूरे साल संतुलित ढंग से शिक्षा दी जाए, जिससे परीक्षा की भी शायद बेहतर तैयारी हो पाए ? परीक्षा के नाम पर पाठ्यचर्या में खेलकूद और कला के विषयों से भी समझौता किया जाता है। यह आवश्यक है कि ज्ञान के इन क्षेत्रों को बचाया जाए, और इस संबंध में गंभीर प्रयास किए जाएँ ताकि इस अवधि के दौरान कामकाज के सार्थक प्रयास संस्थागत हो जाएँ।

देश के ज्यादातर परीक्षा-बोर्ड इस अवधि में किसी वैकल्पिक अध्ययन का अवसर नहीं देते हैं: दो भाषाएँ (जिनमें एक अंग्रेज़ी होती है), गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान परीक्षोपयोगी विषय हैं। इस समूह में गणित और अंग्रेज़ी का पाठ्यक्रम, जो विद्यार्थियों के फेल होने का बड़ा कारण होता है, उसको फिर से निर्मित करने की ज़रूरत है। परीक्षा में 'पास-फेल' की अवधारणा को भी बदलने की ज़रूरत है और 'उत्तीर्णांक' के मायनों की समीक्षा भी आवश्यक है। इससे जुड़े मुद्दों की चर्चा अध्याय 5 में व्यवस्थागत सुधार के खंड में की गई है।

कुछ परीक्षा-बोर्ड विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र, संगीत और पाक कला में से एक विकल्प चुनने का अवसर देते हैं। इस प्रकार के विकल्प बढ़ाए जाने चाहिए और अधिक पारंपरिक विषयों की जगह इस तरह के विकल्पों को शामिल करने की संभावनाओं पर विचार करना चाहिए। व्यावसायिक विकल्प भी शुरू किए जा सकते हैं। स्थानीय समुदाय के उत्पादक कार्य संसार में से इस तरह के कई व्यावसायिक विकल्प उभर कर आ सकते हैं। उदाहरण के लिए गैरेज में गाड़ियों की देखभाल, दर्जी का काम, चिकित्सा से जुड़ी सेवाओं को शामिल करके कई सार्थक वैकल्पिक विषय बनाए जा सकते हैं। स्कूल बोर्ड इस तरह के अधिगम को प्रामाणिक करार दे सकते हैं ताकि उन असंख्य स्थानों को मान्यता मिल सके जहाँ बच्चे स्कूल के बाहर सीखते हैं। हमारे देश में, अनेक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में गुणवत्ता का ह्रास हुआ है और इसीलिए वे विद्यार्थियों को सार्थक काम से संबंधित ज्ञान और कौशल देने में असमर्थ रहे हैं। कई मामलों में तो यह एक घिसे-पिटे प्रमाण-पत्र देने वाले कार्यक्रम की तरह चलते रहते हैं जिनमें काम करना सीखने और काम पाना सीखने में कोई अंतर नहीं किया जाता।

3.10.4 उच्च माध्यमिक शिक्षा

उच्च माध्यमिक स्कूल में अकादमिक और व्यावसायिक विषयों की स्थिति की समीक्षा करने की आवश्यकता है। यह समीक्षा इस बात को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए कि बोर्ड की परीक्षाओं और प्रवेश परीक्षाओं को लेकर आज भी उतनी ही तन्मयता है और इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि 'अकादमिक विषय' कहे जाने वाले हिस्सों को ज्यादा तरजीह दी जाती है और 'व्यावसायिक विषयों' का तो विकास तक नहीं हो पा रहा है। दो सालों की यह अवधि वह समय है जब विद्यार्थी अपनी रुचियों, क्षमताओं और भविष्य की ज़रूरतों के हिसाब से विकल्प चुनते हैं।

अपनी रुचि और अपने भविष्य में पेशे के आधार पर वैकल्पिक विषयों के अध्ययन की संभावना जिससे विद्यार्थी ज्ञान के भिन्न क्षेत्रों को समझ पाएँ इस चरण की शिक्षा में अंतर्निहित है।

विषयों की गहराई में उतरना और समस्याओं और मुद्दों को एक समृद्ध अंतरअनुशासनिक परिप्रेक्ष्य में देख पाना भी इस स्तर पर संभव है। यह ज़रूरी है कि चुने गए विषयों के बीच और उनके बाहर भी इस तरह की जाँच-पड़ताल की अनुमति हो।

ज़्यादातर परीक्षा-बोर्ड अनिवार्य भाषायी विषयों के अलावा विषयों में कई तरह के विकल्प बच्चों को देते हैं। परन्तु वे औपचारिक या अनौपचारिक प्रतिबंध चिंताजनक हैं जो विद्यार्थियों के विषयों के चुनाव को सीमित कर देते हैं। कई परीक्षा-बोर्ड विषयों को विज्ञान के विषय, वाणिज्य के विषय और कला के विषय के रूप में संयोजित कर देते हैं और इसी रूप में विषयों की उपलब्धता पर नियंत्रण रखते हैं। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न विषय चुनने की संभावना पर रोक नहीं लगाता है, लेकिन कुछ समूहों की बढ़ती लोकप्रियता और विषयों के आपसी दर्जे को ध्यान में रखकर इनमें से कई विकल्प अब विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध नहीं हैं। साथ ही विश्वविद्यालयों को भी अपनी दाखिले की प्रक्रिया की समीक्षा करने की आवश्यकता है क्योंकि वहाँ प्रवेश बारहवीं स्तर पर पढ़े गए विषयों के आधार पर किए जाते हैं। परिणामस्वरूप, कई महत्वपूर्ण विषय और विषय सम्मिश्रण, उदाहरण के लिए भौतिकी, गणित, और दर्शन या साहित्य, जीवविज्ञान और इतिहास, विद्यार्थियों के लिए बंद हो गए हैं।

आजकल समय-सारणी और प्रचलित विषयों के तर्क के आधार पर स्कूलों में मेडिकल और इंजीनियरिंग के विषयों के अनूकूल कक्षाएँ चलाने का प्रचलन है । देश के कई भागों में जो विद्यार्थी कला और अन्य विषय पढ़ना चाहते हैं उनके पास चुनने के लिए बहुत ही कम विकल्प होते हैं। स्कूल भी विद्यार्थियों को गैर-पारंपरिक विषय-समूह चुनने से हतोत्साहित करते हैं, क्योंकि अगर विद्यार्थी ऐसे विकल्प चुन लें तो समय-सारणी बनाने में बहुत समस्या होती है। हमारा विश्वास है कि विद्यार्थियों के लिए सभी विकल्प उपलब्ध करवाना बहुत ही ज़रूरी है। अगर एक स्कूल में किसी विशेष विषय को पढ़ने में इच्छुक विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त नहीं है तो पड़ोस के दूसरे स्कूलों के साथ मिलकर कोई व्यवस्था की जा सकती है ताकि स्कूल मिलकर एक अध्यापक को उस विषय की ज़िम्मेदारी दे दें। इस तरह के संदर्भ व्यक्तियों/शिक्षकों की व्यवस्था खण्ड के स्तर पर उन विशेष विषयों को पढ़ाने के लिए की जा सकती है जो आमतौर पर स्कूलों में उपलब्ध नहीं होते। बोर्ड भी उन विषयों को प्रोत्साहन देने में सक्रिय भूमिका निभाने के बारे में सोच सकते हैं जिन पर आमतौर पर कम ध्यान दिया जाता है।

बारहवीं के स्तर पर जो विषय बच्चों के सामने रखे जाते हैं उन्हें उस अनुशासन में होने वाले विकास के प्रति सजग रहना चाहिए क्योंकि विकास की इस प्रक्रिया में ज्ञान के नए क्षेत्र तराशे जाते हैं । इसमें अनुशासनों की सीमाएँ हिलती हैं और बहु-अनुशासनिक अध्ययनों का विकास होता है। विभिन्न अनुशासनों के अंदर ही अध्ययन के कई क्षेत्र ऐसे हैं जिनका महत्व बढ़ रहा है। अगर विद्यार्थियों को ऐसे अध्ययन के क्षेत्रों में काम करने के मौके देने हों तो वैकल्पिक मॉड्यूल पेश करने के लिए पाठ्यक्रम भी बनाए जा सकते हैं, बजाय इसके कि सब कुछ पढ़ा दिया जाए या कोर्स में बहुत कुछ भर दिया जाए। उदाहरण के लिए, इतिहास में वैकल्पिक मॉड्यूल हो सकता है जिसमें 'पुरातत्व' या 'संसार का इतिहास' पढ़ने का विकल्प हो। इसी प्रकार भौतिकी में खगोल विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान या रॉकेट विज्ञान पढ़ने के विकल्प दिए जा सकते हैं ताकि अध्ययन के वैकल्पिक मॉड्यूल पाठ्यक्रम के तहत ही उपलब्ध हो जाएँ।

वृहत और विशाल पाठ्यक्रम को पूरा करने के दबाव में सीखने के कई पहलुओं का पूरी तरह

उपयोग नहीं किया जाता जिससे अधिगम का बहुत अहित होता है। प्रयोग करना, भ्रमण, संदर्भ सामग्री पढ़ना, परियोजनाएँ बनाना और प्रस्तुतियाँ करना भी सीखने के महत्वपूर्ण पहलू हैं। साधन युक्त प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय और कंप्यूटर की उपलब्धि भी बहुत ज़रूरी है और यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करने की ज़रूरत है कि स्कूलों और जूनियर महाविद्यालयों में ऐसे संसाधन उपलब्ध हों।

व्यावसायिक शिक्षा मूलतः उन लोगों को ध्यान में रखकर शुरू की गई थी जो काम में उन लोगों से पहले लग जाते हैं जो अकादमिक परीक्षा पास करके कार्य क्षेत्र में आते है या आगे अध्ययन और अनुसंधान करते हैं। हम उत्पादक कार्य को ज्ञान अर्जन का शिक्षाशास्त्रीय माध्यम बनाने का सुझाव देते हैं ताकि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों में मूल्य तथा बहुविध कौशल विकसित हो सकें।

इस चरण की जो विकासमूलक प्रकृति है उसके लिए बच्चों को प्रशिक्षित व्यावसायिकों द्वारा मार्गदर्शन और परामर्श भी उपलब्ध होने चाहिए। स्वयं की समझ और कैरियर के विकल्प के लिए उन पेशेवरों का हस्तक्षेप बहुत ज़रूरी है। इसके अलावा, यह स्तर किशोरावस्था का भी होता है जिसमें परिवार, साथियों और स्कूली परिस्थितियों से सामंजस्य बिठाने की मांग के कारण कई व्यक्तिगत, सामाजिक और भावनात्मक संकट उभरते हैं। अगर स्कूल में इस तरह के संकट से निपटने के लिए पेशेवर सहायता उपलब्ध होगी तो किशोरों को बढ़ते हुए अकादमिक और सामाजिक दबाव से निपटने में मदद मिलेगी।

3.10.5 मुक्त विद्यालय और सेतु विद्यालय

राष्ट्रीय ओपन स्कूल के साथ शुरू होकर, कई राज्यों में काम कर रहे ओपन स्कूल बोर्ड विद्यार्थियों को कहीं अधिक और लचीले विकल्प दे पा रहे हैं। वे चुनाव के लिए विषयों की जो शृंखला प्रस्तुत करते हैं वह काफी विस्तृत है। परीक्षा लेने के लचीले तरीके और दूसरे बोर्ड से प्राप्तांकों के स्थानांतरण की सुविधा के कारण मुक्त विद्यालय की प्रमाण-पत्र देने की प्रक्रिया काफी मानवीय है। मुक्त विद्यालय की जानकारी और उसकी पहुंच का व्यापक रूप से प्रसार करना चाहिए। इसके साथ ही अन्य बोर्ड की परीक्षाओं से समतुल्यता को लेकर प्रचलित गलत धारणाओं को संबोधित करने के प्रयास भी करने चाहिए। दूसरे बोर्ड की परीक्षाओं से जोड़ते हुए अगर मुक्त विद्यालय की परीक्षाएँ भी अन्य बोर्ड परीक्षाओं की तिथियों के आस-पास ही आयोजित की जाएँ तो यह सुनिश्चित किया जा सकता है विद्यार्थियों का एक साल बर्बाद न हो।

देश के कई भागों में सेतु कार्यक्रम चलाए जाते हैं जिससे स्कूल से बाहर छूटे हुए बच्चे इन कार्यक्रमों में पढ़ पाएँ और अपनी उम्र के उपयुक्त

मूल्यांकन का यह प्रायोजन नहीं है :

- बच्चों को डर के दबाव में अध्ययन के लिए प्रेरित करना
- बच्चों को नाम देना जैसे 'धीमी गति से सीखने वाला', 'होशियार', 'समस्यात्मक विद्यार्थी'। ऐसे विभाजन अधिगम की सारी जिम्मेदारी विद्यार्थी पर डाल देते हैं और शिक्षाशास्त्र की भूमिका पर से ध्यान हटा देते हैं।
- उन बच्चों को पहचानना जिन्हें उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है (इसमें औपचारिक आकलन की प्रतीक्षा किए बिना शिक्षक, शिक्षण के दौरान ही शिक्षाशास्त्रीय योजना और व्यक्तिगत ध्यान देकर यह कर सकता है)।
- अधिगम की कठिनाइयों और समस्या क्षेत्रों की पहचान करना - अवधारणात्मक कठिनाइयों के व्यापक सूचक मूल्यांकन और परीक्षा से पता किए जा सकते हैं। निदान के लिए परीक्षा के विशेष औजारों की और प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है। यह ज़रूरत साक्षरता और संख्यनन के आधारभूत क्षेत्रों के लिए है न कि विषयों के लिए।

कक्षाओं में समेकित हो जाएँ। पाठ्यचर्या के इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी होगा कि ये कार्यक्रम बहुत सोच समझ कर बनाए जाएँ। कम या निम्न कोटि का कार्यक्रम बच्चों के उस वंचन को और भी बदतर बना देगा जिसके वे पहले से ही शिकार हैं और जो वंचन उसके अधिकारों के प्रति घोर अवमानना दर्शाता है। ऐसे कार्यक्रमों की सफलता के लिए बहुत ज़रूरी है कि निरंतर शोध होते रहें और शिक्षाशास्त्र और वांछित सामग्री का विकास होता रहे। यह निहायत ही ज़रूरी है कि मानकों को सख्ती से लागू किया जाए, सुविधाओं का प्रावधान हो और एक बार स्कूल में नामांकन हो जाने के बाद इन बच्चों को निरंतर अकादमिक और सामाजिक समर्थन मिलता रहे।

3.11 आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जडें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व-स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल है।

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं। परीक्षा तंत्र और खासकर बोर्ड की परीक्षाओं से जुड़े मुद्दों को अध्याय 5 में अलग से संबोधित किया गया है।

3.11.1 आकलन का उद्देश्य

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी, अकादमिक और शैक्षिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला, तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों का नियमित परीक्षण कतई नहीं है। बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

सुनियोजित आकलन और नियमित प्रगति रपट शिक्षार्थियों को उनके काम की प्रतिपुष्टि देते हैं और साथ ही वे मानक भी स्थापित करते हैं जिनको पाने के लिए विद्यार्थी प्रयासरत रहते हैं। वे अभिभावकों को उनके बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता और उनके विकास के बारे में भी जानकारी देते हैं। ऐसा आकलन प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने का तरीका बिलकुल नहीं है; अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए तो बिलकुल नहीं होना चाहिए। अंतिम बिंदु है कि विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है, या अध्यापन के एक कोर्स के खत्म होने का प्रमाण देता है या जिससे दूसरे स्कूलों, शैक्षिक संस्थानों, समुदाय और भावी मालिकों (रोज़गार देने वालों) को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

दक्षताएँ

दक्षताएँ शिक्षण और उससे संबंधित आकलन का ध्यान पाठ्यपुस्तक एवं तथ्ययुक्त विषयवस्तु से दूर ले जाने का एक प्रयास है। परन्तु अधिगम के न्यूनतम स्तर के उपागम में दक्षताओं को विस्तृत उप-दक्षताओं और उप-कौशलों में तोड़ा गया है, यह मानकर कि इनका कुल योग दक्षता है। परन्तु अक्सर व्यवहार और प्रस्तुति पर ध्यान देने से अवधारणाओं के लिए तो जगह ही नहीं बचती। उप-कौशलों के इस तार्किक, लेकिन यांत्रिक सूचीकरण से और उनकी उपलब्धि के लिए बनाई गई सख्त समय-सारणी से, कहीं भी न यह झलकता है कि अधिगम एवं दक्षताओं के उपयोग में खुद में ही लचीलापन हो सकता है, और न ही यह झलकता है कि जिस चक्र में दक्षताएं सीखी जाती हैं, ज़रूरी नहीं है कि वे निर्धारित समय और गति के अनुसार से ही सीखी जाएंगी। यह सरोकार भी कहीं प्रतिबिंबित नहीं होता कि समग्र, दरअसल विभिन्न भागों के जोड़ से ज्यादा भी हो सकता है।

इस विस्तृत सूची के लिए अधिगम और परीक्षण के विषयों की सूची बनाना और पूर्व निर्धारित अधिगम के परिणामों के लिए पढ़ाना बिलकुल ही अव्यावहारिक है और शिक्षाशास्त्रीय नज़र से अविश्वसनीय भी है।

यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उन ज़रूरतों को पहचानने में मदद मिलती है, जिन ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाता है। इस धारणा ने पाठ्यचर्या की योजना बनाने में बड़ी समस्याएँ पैदा की हैं। इस 'उपचारात्मक' शब्द को उन विशिष्ट/विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखने की ज़रूरत है जो उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं जिनको पठन/साक्षरता (पठन में असफलता जिससे बाद में बोध पर फर्क पड़ता है) या अंकज्ञान (खासकर गणित के संकेतों वाले पहलू, स्थानीय मान और संगणना संबंधी) में समस्याएँ आती हैं। शिक्षकों को अच्छे निदानकारी परीक्षणों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत है, जो उन्हें उपचार के प्रयासों में मदद करेगा। ठीक इसी तरह, निदानात्मक कार्य के लिए भी विशिष्ट रूप से विकसित सामग्री और नियोजन की ज़रूरत है ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से काम कर पाएँ। इस उपचारात्मक काम की शुरुआत उन चीज़ों से होगी जो बच्चे को पहले से आती हैं और उन चीज़ों तक जाएगी जिन्हें बच्चे को सीखने की ज़रूरत है। यह आकलन और सतर्क अवलोकन की सतत प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शब्दों का बिना सोचे-विचारे किया गया उपयोग, प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र की आम समस्याओं से हमारा ध्यान हटा देता है और अधिगम एवं असफलता की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से बच्चे पर डाल देता है।

3.11.2 शिक्षार्थियों का आकलन

बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो। तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुनः परिभाषित करने और

उनके नए मानक ढूँढ़ने की ज़रूरत है। विशिष्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा।

3.11.3 शिक्षण के क्रम में आकलन

प्रगति-पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती हैं। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश – ''किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है''। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

3.11.4 पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जाँचे जा सकते; बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने की प्रकृति के विपरीत होगा। इनमें काम, स्वास्थ्य, योग, शारीरिक शिक्षा, संगीत एवं कला शामिल हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा और योग के कौशल आधारित पक्षों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों को सतत और गुणात्मक आकलन की ज़रूरत होती है। वर्तमान में इन्हें पाठ्यचर्या में कम महत्व देने का चलन है। इन क्षेत्रों के लिए न ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है, और न ही पाठ्यचर्या के लिए ढंग से योजना बनाई जाती है और आगे बढ़ें तो इन विषयों को दिए गए समय को 'विशेष पढ़ाई' के लिए हमेशा बलिदान कर दिया जाता है। पाठ्यचर्या के इन भागों के साथ यह बहुत ही बड़ा समझौता है, जबकि इन भागों की गहरी शैक्षिक महत्ता और संभावनाएँ होती हैं।

'अंक' बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे।

3.11.5 आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन

आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए, एवं अधिगम को मापने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए।

जब तक परीक्षाएँ बच्चों की पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान को याद करने की क्षमताओं का परीक्षण करती रहेंगी, तब तक पाठ्यचर्या को सीखने की तरफ मोड़ने के सभी प्रयास विफल होते रहेंगे। पहला बिंदु यह है कि ज्ञान-आधारित विषय क्षेत्रों में परीक्षाएँ ये समझ पाएँ कि बच्चों ने क्या सीखा और उस ज्ञान को समस्या सुलझाने और व्यवहार में लाने की उनकी क्षमता को जाँच पाएँ। इसके अलावा, परीक्षाएँ यह भी जाँचने में सक्षम होनी चाहिए कि विद्यार्थियों की सोचने की प्रक्रियाएँ कैसी हैं तथा यह पता लगा पाएँ कि क्या शिक्षार्थी ने यह सीखा कि जानकारी कहाँ मिलती है, उस जानकारी का इस्तेमाल कैसे करते हैं और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कैसे करते हैं।

आकलन के लिए जो प्रश्न निर्धारित किए जाते हैं उन्हें किताब में दी गई जानकारी से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। कितनी ही बार बच्चों का अधिगम इसलिए बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि शिक्षक उन उत्तरों को स्वीकार नहीं करते जो कुंजियों में दिए गए उत्तरों से भिन्न होते हैं।

ऐसे प्रश्नों को भी इस्तेमाल करना चाहिए जिनका कोई एक उत्तर नहीं होता और जो बच्चों के सामने चुनौती पेश करते हैं। अच्छे प्रश्न और परीक्षा-पत्र बनाना भी एक कला है और शिक्षकों को ऐसे प्रश्न बनाने पर बल देने की ज़रूरत है। शिक्षकों की अच्छे प्रश्न बनाने की क्षमता और रुचि को बढ़ावा देने के लिए ज़िला या राज्य के स्तर पर प्रतियोगिताएँ की जा सकती हैं। सारे प्रश्न-पत्र कठिनाई की ऐसी रूपरेखा लिए हुए होने चाहिए कि सभी बच्चे सफलता के स्तर को अनुभव कर पाएँ और उत्तर देने एवं समस्या सुलझाने की क्षमता में आत्मविश्वास विकसित कर पाएँ।

प्रश्न उठना

एक लौह प्रगलन प्लांट आरंभ करने से पहले कौनसी चार बातें ध्यान में रखने की ज़रूरत होती है ?

के स्थान पर

यदि एक उद्योगपति एक लौह प्रगलन प्लांट लगाना चाहता है तो वह किस स्थान का चुनाव करे और क्यों ?

चिड़िया की चोंच का आकार अनुकूलन में किस प्रकार से सहायता देता है।

के स्थान पर

अपने पड़ोस में दिखने वाली साधारण चिड़िया की चोंच का चित्र बनाओ। उसकी चोंच के आधार पर वर्णित करो कि उसकी भोजन की आदतें क्या होंगी और तुम्हारे पड़ोस में उसे वैसा भोजन कहाँ मिल पाएगा?

खुली-पुस्तक परीक्षा-पत्र बनाना भी एक चुनौती है जिसे स्कूल के प्रत्येक स्तर के पाठ्यचर्या प्रयासों में शामिल करना चाहिए। लेकिन ऐसा करने के लिए अध्यापकों और प्रश्न-पत्र बनाने वालों से यह अपेक्षा होगी कि वे व्याख्या करने और अधिगम के व्यावहारीय पहलू पर ज्यादा ज़ोर दें न कि किताब में दिए गए तर्क और तथ्यों पर। इस तरह के कई सफल उदाहरण हमारे पास मौजूद हैं कि ऐसी परीक्षाएँ बड़े स्तर पर आयोजित की जा सकती हैं और शिक्षक खुद ऐसी परीक्षाओं के परिणामों का नियमन कर सकते हैं और उन पर ऐसे नियमन के लिए भरोसा किया जा सकता है। इसीलिए, परियोजनाओं और प्रयोगशाला के काम के आकलन को भी और विश्वसनीय और पुख्ता बनाया जा सकता है।

यह ज़रूरी है कि जाँचे गए उत्तर वापिस मिलने पर बच्चे अपने उत्तरों को दोबारा लिखें और शिक्षक उन पर पुनर्विचार करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा

सके कि बच्चों ने कुछ सीखा और ऐसी कठिन परीक्षा देने से उन्हें कोई लाभ हुआ।

स्पर्धा प्रोत्साहन तो देती है लेकिन वह प्रेरणा का आंतरिक रूप न होकर बाह्य रूप ही होता है। निश्चय ही इसे स्थापित करना और संचालित करना बड़ा आसान होता है इसीलिए शिक्षक और स्कूली व्यवस्थाएँ उत्कृष्टता की प्रेरणा को पोषण देने के लिए अक्सर इसका सहारा ले लेती हैं। स्कूल पूर्व-प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को प्रथम, द्वितीय की श्रेणियों में बाँटने लगते हैं, जिससे उनमें स्पर्धा की भावना आत्मसात हो। इस तरह की प्रतियोगी प्रेरणा के अधिगम पर कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं; अक्सर प्रभाव बनाने के लिए सतही स्तर पर सीखना भर पर्याप्त होता है। समय के साथ-साथ बच्चे अपनी रुचि के अनुसार पहल करने की क्षमता खो देते हैं और इस प्रक्रिया में वे क्षेत्र जिनमें पाठ्यचर्या में 'अंक' नहीं दिए जाते उपेक्षित हो जाते हैं। इसका कक्षा की संस्कृति पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि बच्चे व्यक्तिवादी बनते हैं और सामूहिक कार्य करने की क्षमता खो बैठते हैं। 'परीक्षा' को बिलकुल असंगत महत्व दिया जाता है और उन पर अनावश्यक ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिसमें अक्सर गोपनीयता और निरीक्षण की सख्त व्यवस्था की जाती है। माध्यमिक कक्षाओं तक तो इनके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव आसानी से नहीं दिखते हैं लेकिन यह बच्चों में बेहद तनाव को जन्म देता है जिससे वह बहुत जल्दी उत्तेजित होने की हालत में पहुंच जाते हैं। स्कूल और शिक्षकों को अपने आप से पूछने की ज़रूरत है कि क्या इस तरह के व्यवहारों से सच में बहुत ज्यादा लाभ होता है और अधिगम को दरअसल किस हद तक अंक देने और श्रेणीकृत करने की ज़रूरत है।

3.11.6 स्व–आकलन और प्रतिपुष्टि

आकलन की भूमिका उस प्रगति को समझने की होती है जो शिक्षार्थी और शिक्षक निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में करते हैं। और इस प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए उसकी समीक्षा भी करते हैं। प्रतिपुष्टि पाने के ऐसे अवसर हमेशा उपलब्ध होने चाहिए जो प्रदर्शन को दोहराने व सुधारने की दिशा में ले जाएँ, परीक्षाओं व मूल्यांकन के भय का इस्तेमाल किए बिना पढ़ने की दिशा में प्रेरित करें।

विद्यार्थियों की मौजूदगी में की गई जाँच व सुधार कार्य उन्हें इस तरह की प्रतिपुष्टि देते हैं कि उन्होंने क्या सही किया, क्या गलत और क्यों? बच्चों से इस बारे में जानकारी लेना कि उन्होंने कोई उत्तर क्यों दिया, शिक्षक को लिखित उत्तर से आगे जाने में मदद देता है और बच्चों की सोच से जुड़ने का मौका देता है। ऐसी प्रक्रियाएँ परीक्षाओं के डरावने और निर्णायक गुण को भी दूर कर देती हैं और बच्चों को सक्षम बनाती हैं कि वह अपनी गलतियों को समझें, उन पर ध्यान दें और उनसे सीखें। कभी-कभी प्रधानाध्यापक यह कह कर एतराज उठाते हैं कि बच्चों की मौजूदगी में की गई जाँच में वस्तुपरकता नहीं आ पाती। वस्तुपरकता के लिए यह सरोकार बिलकुल अनुचित है जो प्रतियोगी व्यवस्था से उपजता है और जो बच्चों के परीक्षण में विश्वास रखता है। वस्तुपरकता की दृष्टि से यह सरोकार उस मूल्यांकन के लिए भी अनुचित है जो शैक्षिक लक्ष्यों से सुसंगत हो।

न केवल अधिगम के परिणाम बल्कि अधिगम के अनुभवों का भी मूल्यांकन होना चाहिए। शिक्षार्थी बहुत खुशी से अपने अनुभवों की संपूर्णता पर टिप्पणी देते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर के ऐसे अभ्यास बनाए जा सकते हैं जिनसे बच्चे अपने अधिगम का आकलन करने और उस पर चिंतन करने में सक्षम हो पाएँ। इस तरह के अनुभव उन्हें स्व-नियामन की क्षमताएँ भी देते हैं जो 'सीखने के लिए सीखने' की खातिर ज़रूरी होती हैं। ऐसी जानकारी शिक्षक के लिए भी बहुत मूल्यवान प्रतिपुष्टि होती है जिसका उपयोग अधिगम की पूरी व्यवस्था को बेहतर बनाने में किया जा सकता है।

बच्चों के साथ की गई प्रत्येक कक्षायी अंतःक्रिया की माँग होगी कि बच्चे अपने काम का खुद मूल्यांकन करें और उनसे यह चर्चा भी हो कि किसका परीक्षण किया जाना चाहिए और यह पता करने के क्या तरीके हैं कि क्षमताओं का विकास दरअसल हुआ कि नहीं। बहुत छोटे बच्चे भी इसका सही आकलन कर सकते हैं कि कौन से काम वे कर पाते हैं और कौन से नहीं। अध्यापन की भूमिका यह है कि वह प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुसार सीखने के सर्वश्रेष्ठ मौके दे और इस तरह के अनुभव दे कि जिससे संज्ञानात्मक गुणों का विकास हो, शारीरिक कुशलक्षेम सुनिश्चित हो, खेल-कूद संबंधी गुणों का भी विकास हो और सौंदर्यबोध और भावनात्मकता भी विकसित हो।

यह ज़रूरी है कि रपट कार्ड बच्चों और माता पिता के सामने बच्चों के कई क्षेत्रों में विकास पर एक समावेशी और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करे। शिक्षक प्रत्येक बच्चे के बारे में ऐसी बातें कह पाएँ जो बताएँ कि उस बालक/शिक्षार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान दिया गया है, एक सकारात्मक आत्म छवि को मजबूत करती हो और उनके सामने ऐसे व्यक्तिगत उद्देश्य रख पाती हो जिनको लक्ष्य करते हुए वे काम करें। चाहे अंकों की सूचना दी जा रही हो या श्रेणियों की, शिक्षक के द्वारा दिया गुणात्मक कथन आकलन के समर्थन के लिए बहुत ज़रूरी है। केवल इसी तरह का रिश्ता बनाने के बाद एक शिक्षक विद्यार्थियों को प्रभावित कर सकता है और उनके अधिगम में योगदान दे सकता है। शिक्षा प्रत्येक बच्चे का आकलन करे, इसके अलावा प्रत्येक बच्चा स्वयं का भी आकलन कर सकता है और उस स्व-आकलन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल करना चाहिए।

वर्तमान में, कई रिपोर्ट कार्डों में विषय क्षेत्रों पर जानकारी होती है लेकिन बच्चे के विकास के दूसरे पहलुओं पर बताने के लिए कुछ नहीं होता है; जैसे - स्वास्थ्य, शारीरिक कुशलता, खेलों में दक्षता, सामाजिक कौशल, कला और हस्तकला में दक्षता। बच्चों की शिक्षा और उनके विकास के इन पहलुओं पर दिए गए गुणात्मक कथन शैक्षिक सरोकारों का एक समग्र आकलन दे सकेंगे।

3.11.7 वे क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की ज़रूरत है

पाठ्यचर्या के ऐसे कई क्षेत्र हैं जिनका आकलन किया जा सकता है पर जिनके लिए हमारे पास विश्वसनीय और प्रभावी उपकरण नहीं हैं। इसमें वह अधिगम भी शामिल है जिसके लिए समूहों में काम होता है और नाट्य, काम और हस्तकला के क्षेत्रों का अधिगम भी शामिल है जहाँ कौशल एवं दक्षताएँ लंबे समय में विकसित हो पाती हैं और जिन्हें बहुत सावधानी से किए गए अवलोकन की ज़रूरत होती है।

सतत व समावेशी मूल्यांकन को ही एक सार्थक मूल्यांकन माना गया है। हालांकि इस पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की ज़रूरत है कि इसका प्रभावी उपयोग करने के लिए कब लागू करना है। अगर मूल्यांकन को सार्थक रूप से लागू करना है और उसके आकलन की विश्वसनीयता रखनी है तो ऐसा मूल्यांकन शिक्षकों से बहुत ज्यादा समय देने की मांग करता है तथा यह मांग भी करता है कि वह सावधानी और कुशलता से रिकॉर्ड रखे। अगर यह प्रक्रिया महज बच्चों के बोझ को बढ़ाए और सारी गतिविधियों को आकलन का ज़रिया बना दे और उन्हें शिक्षक की ताकत का अनुभव कराती रहे तो वह शिक्षा के प्रयोजन को ही विफल कर देती है। जब तक व्यवस्था ऐसे आकलन के लिए पर्याप्त रूप से तैयार नहीं है तब तक शिक्षकों के लिए यही बेहतर है कि वे आकलन के सीमित रूपों का ही उपयोग करें। लेकिन उसमें वे आयाम शामिल कर लें जिनसे आकलन सीखने के एक सार्थक दस्तावेज़ के रूप में उभर पाए।

अंततः आकलन में विश्वसनीयता को विकसित करने और बनाए रखने की ज़रूरत है जिससे वे

प्रतिपुष्टिकरण की भूमिका को सार्थक रूप से निभाते रहें।

3.11.8 विभिन्न चरणों में आकलन

पूर्व प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक चरण की कक्षा 1 एवं 2 : इस स्तर पर आकलन में विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों की गतिविधियों पर दिए गए गुणात्मक कथन होने चाहिए और उनके स्वास्थ्य और शारीरिक विकास का आकलन होना चाहिए। यह आकलन रोज़मर्रा की अंतःक्रियाओं के दौरान किए गए अवलोकनों पर आधारित होने चाहिए। किसी भी कारणवश बच्चों की लिखित या मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए।

प्राथमिक चरण की कक्षा 3 से 8 तक : यहाँ कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है जिसमें मौखिक एवं लिखित परीक्षा और अवलोकन शामिल हैं। बच्चों को यह पता होना चाहिए कि उनका आकलन किया जा रहा है पर उसको उनकी शैक्षणिक प्रक्रिया के भाग की तरह प्रस्तुत करना चाहिए न कि डरावनी धमकी की तरह। इस चरण पर उपलब्धि के लिए दिए गए अंक और गुणात्मक कथन उन क्षेत्रों के लिए बहुत ज़रूरी हैं जिन पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। कक्षा 5 से बच्चों के स्व-मूल्यांकन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल किया जा सकता है। बड़ी-बड़ी मासिक और वार्षिक परीक्षाओं की जगह समय समय-पर छोटी-छोटी परीक्षाएँ होनी चाहिए। ऐसी परीक्षाएँ जिनमें परीक्षण का आधार मानदण्ड हो। कक्षा 7 से सत्रीय परीक्षाएँ शुरू होनी चाहिए जब बच्चे ज्यादा बड़े हिस्से पढ़ने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार हों और उत्तरों पर काम करते हुए परीक्षा में कुछ घंटे बिताने लायक हो जाएँ। रिपोर्ट कार्ड में फिर से स्वास्थ्य और पोषण पर सामान्य टिप्पणियाँ देने के साथ-साथ शिक्षार्थी के समग्र विकास पर विशिष्ट टिप्पणियाँ हों और माता-पिता के लिए सुझाव हों।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक चरणों में कक्षा 9 से 12 : पाठ्यचर्या के ज्ञान आधारित क्षेत्रों के लिए आकलन, परीक्षाओं, परियोजनाओं की रिपोर्ट पर आधारित हो सकता है और साथ में शिक्षार्थी का स्व-आकलन भी शामिल हो। बाकी विषयों का आकलन अवलोकन एवं स्व-मूल्यांकन द्वारा किया जाना चाहिए।

रिपोर्ट में विद्यार्थियों के विभिन्न कौशलों/ज्ञान के क्षेत्रों और प्रतिशतांकों के बारे में अधिक विश्लेषण हो। यह बच्चों को उन विषयों को समझने में मदद करेगा जिन पर उन्हें ध्यान देना चाहिए और उनके आगे के विकल्प चयन की प्रक्रिया के लिए एक आधार भी देगा।

सच में, बच्चों पर इस तरह बोझ बढ़ाना बहुत ही क्रूरता है। मुझे अपने बेटे की मदद के लिए इस लड़के को नौकरी पर रखना पड़ा!
(*साभारः आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया*)